श्री गुरवे नमः

शिक्षा कौस्तुभ

त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष 01 | अंक 02 | दिसम्बर 2023 | पृष्ठ 58

अयोध्या

राम मन्दिर

प्रकाशक

राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ
जयपुर

प्रेरणा स्रोत : ''संस्कृत सुमेरु'' पं. मोतीलाल जोशी

ISSN :

शिक्षा कौस्तुभ

त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष 1 | अंक 2 दिसम्बर 2023 | पृष्ठ 58

आशीष प्रदाता
- श्री श्री 1008 भुवनेश्वरानंद जी महाराज
- महंत श्री राम प्रसाद जी महाराज
- महंत श्री हरिशंकर दास जी वेदांती

प्रेरणा स्त्रोत
'संस्कृत सुमेरु'
पं. मोतीलाल जोशी

परामर्श मंडल
- देवर्षि कलानाथ शास्त्री
- प्रो. बनवारी लाल गौड़
- प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र
- प्रो. युगल किशोर मिश्र
- प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
- प्रो. जयप्रकाश नारायण द्विवेदी
- प्रो. सदानंद दीक्षित
- प्रो. गोपीनाथ शर्मा
- डॉ. सरोज कोचर

निर्णायक मण्डल
- डॉ. राजेश्वरी भट्ट
- प्रो. श्रीकृष्ण शर्मा
- प्रो. ताराशंकर पाण्डेय
- डॉ. रामदेव साहू
- डॉ. कृष्णा शर्मा
- प्रो. कुलदीप शर्मा
- डॉ. सुभद्रा जोशी

प्रबन्ध संपादक
डॉ. राजकुमार जोशी

प्रधान संपादक
डॉ. मनीषा शर्मा

संपादक मंडल
डॉ. सीताराम दोतोलिया
डॉ. निरंजन साहू
डॉ. सुरेंद्र कुमार शर्मा
श्रीमती मीनाक्षी शर्मा

प्रकाशक
राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ
शाहपुरा बाग, आमेर रोड़, जयपुर
Ph. : +91-141-2671967 | E-mail : info@rspv.org | Website : www.rspv.org

अनुक्रमणिका

1.	गीताप्रेस के चिरस्मरणीय पुरोधा : चिम्मनलाल गोस्वामी	देवर्षि कलानाथ शास्त्री	4
2.	अयुक्तियुक्त व्यायाम से हृदयाघात	प्रो. वैद्य बनवारीलाल गौड	7
3.	आस्तिकता की अनिवार्यता	गोपीनाथ पारीक गोपेश	12
4.	महावीर विक्रम बजरंगी। कुमति निवार सुमति के संगी॥	पं. महेश दत्त शर्मा 'गुरुजी'	16
5.	वैष्णव परम्परा	महन्त हरिशंकरदास वेदान्ती	22
6.	स्त्री-विमर्श: वैदिक ऋषिकाओं के सन्दर्भ	प्रो. सरोज कौशल	29
7.	संस्कृत भाषा एवं उसके विविध रूप	डॉ. सुभद्रा जोशी	39
8.	महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्यसंतुष्टि का अध्ययन	श्रीमती कविता कुमारी शर्मा	43
9.	गुणवत्तापूर्ण शिक्षा	संगीता शर्मा	46
10.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : क्रियान्वयन समस्याएँ एवं समाधान	दिलीप कुमार पारीक	48
11.	Challenges in Communication and Dissemination of Traditional Knowledge	Dr. Manisha Sharma	51

मुद्रण : **कन्ट्रोल पी**, जयपुर - मो. : 9549666600

सम्पादकीय

राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन एवं राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ शाहपुराबाग, जयपुर द्वारा श्री श्री 1008 भुवनेश्वरानंद जी महाराज, महंत श्री राम प्रसाद जी महाराज एवं महंत श्री हरिशंकर दास जी वेदांती के शुभाशीर्वाद के परिणामस्वरूप **'शिक्षा कौस्तुभ'** त्रैमासिक शोधपत्रिका के प्रथम वर्ष का द्वितीय अंक प्रकाशित किया जा रहा है। 'संस्कृत सुमेरु' विद्वत् - शिरोमणि स्व. पं. मोतीलाल जी जोशी के संकल्प की परिणति के रूप में उनकी शाश्वती प्रेरणा का यह उत्कृष्ट आयाम विज्ञ परामर्शदाताओं के सत्परामर्श से निर्मित किया जा कर संपादक मण्डल द्वारा सम्पादित किया जा रहा है।

त्रैमासिक शोध पत्रिका के इस अंक में शिक्षा, संस्कृति एवं ज्ञान-विज्ञान के विषयों पर उत्कृष्ट विद्वानों के लेख-शोधलेख संकलित है। सर्वप्रथम राष्ट्रपतिसम्मानित देवर्षि कलानाथ शास्त्री द्वारा लिखित 'गीताप्रेस के चिरस्मरणीय पुरोधा : चिम्मनलाल गोस्वामी' लेख में गोस्वामी जी के व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व को प्रकाशित करते हुए शास्त्री जी ने राजस्थान के गौरव को बढ़ाया है। तत्पश्चात् राष्ट्रपति सम्मापित प्रो. वैद्य बनवारीलाल गौड द्वारा लिखित 'अयुक्तियुक्त व्यायाम से हृदयाघात' लेख में हृदयाघात के कारणों का उल्लेख करते हुए शास्त्रोक्त विधि से निवारण भी बताया है। भारतीय विद्या मनीषी पं. महेश दत्त शर्मा 'गुरुजी' द्वारा 'महावीर विक्रम बजरंगी । कुमति निवार सुमति के संगी ।।' नामक चौपाई का अनेक तुलसी साहित्य के ग्रन्थों से व्याख्या करते हुए नवीन दृष्टि दी है।

महन्त हरिशंकरदास वेदान्ती द्वारा लिखित 'वैष्णव परम्परा' लेख में आचार्य रामान्नदाचार्य की राजस्थान में पल्लिवित परम्परा का उल्लेख किया है। तत्पश्चात् प्रो. सरोज कौशल द्वारा लिखित 'स्त्री-विमर्श : वैदिक ऋषिकाओं के सन्दर्भ' शोधलेख में वैदिककाल में स्त्री शिक्षा एवं स्त्री महत्त्व को प्रकाशित कर वैदिक संस्कृति का मण्डन किया है। डॉ. सुभद्रा जोशी द्वारा लिखित 'संस्कृत भाषा एवं उसके विविध रूप' शीर्षक लेख में संस्कृत भाषा के महत्ता को उजागर किया है। श्रीमती कविता कुमारी शर्मा द्वारा लिखित 'महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्यसंतुष्टि का अध्ययन' शोधलेख में वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था को बताया है। संगीता शर्मा द्वारा लिखित 'गुणवत्तापूर्ण शिक्षा' लेख शिक्षा की गुणवत्ता का महत्त्व बताया है। दिलीप कुमार पारीक द्वारा लिखित 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : क्रियान्वयन ' लेख में 2020 की शिक्षा नीति का सम्पूर्ण प्रारूप प्रस्तुत किया है। डॉ. मनीषा शर्मा द्वारा लिखित 'Challenges in Communication and Dissemination of Traditional Knowledge शोध लेख में चुनौतियों का स्वीकारते हुए प्राचीन एवं वर्तमान का समन्वय मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत किया हैं, जो अत्यंत उपयोगी है।

आशा है, सुधी पाठक इन्हें रुचिपूर्वक हृदयंगम करने हेतु उत्साहशील होंगे।

शुभकामनाओं सहित....

प्रधान संपादक - डॉ. मनीषा शर्मा

गीताप्रेस के चिरस्मरणीय पुरोधा : चिम्मनलाल गोस्वामी

देवर्षि कलानाथ शास्त्री
(राष्ट्रपति सम्मानित), प्रधान सम्पादक ''भारती''संस्कृत मासिक
पीठाचार्य, भाषामीमांसा एवं शास्त्रशोध पीठ - विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर
पूर्व अध्यक्ष - राजस्थान संस्कृत अकादमी
आधुनिक संस्कृत पीठ - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय
पूर्व निदेशक - संस्कृत शिक्षा एवं भाषा विभाग, राजस्थान सरकार
सदस्य - संस्कृत आयोग, भारत सरकार

भारतीय संस्कृति और हमारी धार्मिक परम्परा के पुनरूज्जीवन और विश्वजनित प्रसार के पुनीत कार्य में गोरखपुर स्थित गीता प्रेस का जो अमर, सर्वातिशायी और कालजयी योगदान है उसमें शिखर स्तर के हिन्दी मासिक पत्र 'कल्याण' की जो इतिहास प्रसिद्ध भूमिका है उसकी छाप तो विश्व के करोड़ो हृदयों पर अमिट है ही, उसके साथ ही इस पावन यज्ञ के पुरोधाओं के नाम भी इतिहास की यशोभूमि पर स्वर्णाक्षरों में टंकित हैं। इन पुरोधाओं में श्री जयदयाल जी गोयन्दका और हनुमानप्रसाद पोद्दार का नाम तो सर्वविदित है पर उन्हीं के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर सांस्कृतिक सेवा करने वाले 'कल्याण कल्पतरू' नामक अंग्रेजी मासिक पत्र के सम्पादक और अनेक ग्रन्थों के लेखक और सम्पादक श्री चिम्मनलाल गोस्वामी का नाम उतना प्रसारित नहीं हो पाया। गीता प्रेस के संवर्धन में इन तीनों महापुरुषों की आधारभूत भूमिका रही थी।

गीताप्रेस सन् 1923 में स्थापित हुआ। उसका हिन्दी मासिक पत्र 'कल्याण' सन् 1926 से प्रारम्भ हुआ और उसका अंग्रेजी मासिक पत्र 'कल्याण कल्पतरू' सन् 1934 से प्रारंभ हुआ जिसके सम्पादक रहे श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार के अभिन्न मित्र श्री चिम्मनलाल गोस्वामी जो बीकानेर नरेश के समान हिन्दी, अंग्रेजी,

संस्कृत आदि के विद्वान थे। गीता प्रेस के पुरोधाओं का यह विचार प्रारंभ से ही रहा कि हमारी सांस्कृतिक परम्परा के प्रसार के लिए हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी में भी कोई मासिक पत्र होना चाहिए? उसके प्रवर्तन के लिए योग्य विद्वान् की तलाश प्रारम्भ से ही चल पड़ी थी। बीकानेर के राजसम्मानित गोस्वामी परिवार के एक युवक चिम्मनलाल गोस्वामी ने प्रारम्भ में शास्त्री परीक्षा जयपुर से उत्तीर्ण की, फिर काशी हिन्दु विश्वविद्यालय से एम. ए. परीक्षा उत्तीर्ण की। काशी में इनका संपर्क पं. गोपीनाथ कविराज से भी हुआ, प्रो. जीवनशंकर याज्ञिक से भी। अपनी प्रतिभा के कारण ये महामना मदनमोहन मालवीय के निजी सचिव भी बन गए। इसके फल स्वरूप बीकानेर में इन्हें भरपूर सम्मान मिला, वाल्टर नोबल स्कूल के प्रिंसिपल के रूप में भी इन्होंने कार्य किया।

सन् 1927 में श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार बीकानेर प्रवास में इनसे मिले। यहाँ के सेठ गंभीरचन्द पुजारी ने जो पोद्दार जी के धर्म प्रचार मण्डली के सहयोगी थे, पोद्दार जी को इनसे मिलवाया। पोद्दार जी ने इन्हें गीता प्रेस की धार्मिक पत्रकारिता में अंग्रेजी मासिक पत्र के प्रवर्तन की अनुरोध किया। इसके फलस्वरूप कुछ समय बाद सन् 1933 में ये बीकानेर छोड़कर गोरखपुर में बस गए। यहाँ से 1934 ई. में कल्याण कल्पतरू नाम मासिक पत्र का प्रारंभ हुआ। जिसके संपादक गोस्वामी जी रहे। यह अंग्रेजी मासिक पत्र था जिसमें वरेण्य ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद भी छपते थे, धार्मिक लेख सामग्री प्रकाशित होती थी। अनेक दशकों तक, अपनी जीवन यात्रा के अन्तिम क्षण तक गोस्वमाी जी इस पत्रिका से सम्पादक रहे (संवत् 2031 तक)।

इस पत्रिका के सम्पादन के साथ साथ गोस्वामी जी ने अनेक ग्रन्थों का अंग्रेजी अनुवाद हिन्दी अनुवाद, सम्पादन आदि किया। इसीलिए गत शताब्दी में गीता प्रेस के तीन पुरोधाओं का जो स्मरण किया जाता था उसमें गोयन्दका जी, पोद्दार जी, और गोस्वामी जी का नाम सम्मिलित होता था। गोस्वामी जी के लिखे ग्रन्थों में 'श्री गीतातत्त्वविवेचनी' बहुत लोकप्रिय हुआ। इनके द्वारा भागवत और रामचरितमानस आदि ग्रन्थों का अंग्रेजी अनुवाद किया गया जिसका प्रकाशन गीताप्रेस से हुआ और जिनके कारण बीसवीं सदी के मध्य में भारत के ऐसे आधार ग्रन्थों का प्रसारण विश्वभर में हो पाया। वाल्मीकिरामायण का अनुवाद भी इन्होंने प्रारंभ किया था जो इनके अस्वास्थ्यवश पूरा नहीं हो पाया।

श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार के निधन के बाद 'कल्याण' का सम्पादन भी कुछ समय के लिए इनके कन्धों पर आ गया। इन्हें जगन्नाथपुरी के गोवर्धनपीठ के शङ्कराचार्य पद के लिए भी प्रस्तावित किया गया था किन्तु अस्वास्थ्यवश इन्होंने स्वयं सादर उसे अस्वीकार कर दिया। इनके द्वारा जिन अनेक ग्रन्थों का सम्पादन किया गया था उनमें जयपुर के मूर्धन्य मनीषी सुप्रसिद्ध कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथशास्त्री का संस्कृत काव्य 'गोविन्दवैभवम्' (हिन्दी अनुवाद सहित) सन् 1961 में प्रकाशित हुआ। भट्ट जी का एक अन्य ग्रन्थ 'शरणागतिरहस्य' सन् 1953 से पूर्व प्रकाशित हो गया था।

राजस्थान के इस मूर्धन्य मनीषी ने अपनी जीवनयात्रा का अधिकांश काल गोरखपुर में रहते हुए गीताप्रेस की सांस्कृतिक साधना को समर्पित कर अपने जीवन को सफल बनाया। प्रशस्ति या प्रचार की ललक से दूर विद्वत्प्रवर श्री चिम्मनलाल गोस्वामी गीताप्रेस के इतिहास से जुड़ी एक चिरस्मरणीय विभूति हैं जिनकी जीवन संगिनी अवश्य उनके साथ रही किन्तु किसी सन्तान को उन्होंने जन्म नहीं दिया। गोस्वामी का जन्म संवत् 1957 में बीकानेर में हुआ था और मृत्यु संवत् 2031 में गोरखपुर में हुई। इस प्रकार लगभग 74 वर्ष की जीवनयात्रा द्वारा इन्होंने भारतीय संस्कृति की जो निःस्वार्थ सेवा की वह इतिहास में अमर रहेगी।

अयुक्तियुक्त व्यायाम से हृदयाघात

डा. विश्वावसु गौड
असिस्टेंट प्रोफेसर, एम. जे. एफ. आयुर्वेद
महाविद्यालय, हाड़ोता, जयपुर (राजस्थान)

(म.म.राष्ट्रपतिसम्मानित) प्रो. बनवारी लाल गौड़
पूर्व कुलपति, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्ण राजस्थान
आयुर्वेद विश्वविद्यालयः, जोधपुर

जयपुर में 15 फरवरी 2023 से 24 फरवरी 2023 के बीच दो आधुनिक चिकित्साविशेषज्ञों की खेलते समय ही हार्ट अटैक (हृदयाघात) से मृत्यु हो गई | दोनों निरन्तर खेलने वाले खिलाड़ी थे, एक क्रिकेट के खिलाड़ी थे तो दूसरे बैडमिंटन के खिलाड़ी थे और दोनों ही श्रेष्ठ चिकित्सक थे | जो बैडमिंटन के खिलाड़ी थे वे तो अस्थिरोगविशेषज्ञ थे तथा विशेष रूप से खिलाड़ियों के होने वाले आघात को ठीक करने में अत्यन्त दक्ष थे |

इससे पहले भी जिम करते समय या अन्य थोड़ा परिश्रम करते समय भी कुछ चिकित्सकों की हार्ट अटैक (हृदयाघात) से मौत होना चिन्ता का विषय है | इन डॉक्टर्स की उम्र 50 वर्ष से कम थी। प्रोफेसर सी.एम. शर्मा, जो कि एस. एम. एस. मेडिकल कॉलेज के न्यूरोलॉजी विभाग के विभागाध्यक्ष थे, उनकी उम्र अवश्य सम्भवतः 55 वर्ष से अधिक थी, लेकिन वे लगभग स्वस्थ थे तथा प्रतिदिन व्यायाम करते थे, जिम में ट्रेडमिल पर भी निरन्तर चलते थे और एक दिन उस ट्रेडमिल पर चलते हुए ही हार्ट अटैक (हृदयाघात) से एक श्रेष्ठ व्यक्ति की, एक श्रेष्ठ शिक्षक-चिकित्सक की, एक समाजसेवक की असामयिक मृत्यु हो गई।

विशेषज्ञों का कहना है कि कोरोना-काल के बाद राजस्थान के सबसे बड़े हॉस्पिटल एस.एम.एस. हॉस्पिटल में प्रतिदिन 45 से अधिक हार्टअटैक के रोगी आ रहे हैं, इनमें 40 साल से भी कम उम्र के रोगियों की संख्या लगभग 15- 20 होती है। यह केवल जयपुर की ही बात नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत वर्ष में और सम्पूर्ण विश्व में भी कोरोना के बाद हार्ट अटैक (हृदयाघात) से मरने वालों की संख्या में अभिवृद्धि हुई है, भारतवर्ष में यह अभिवृद्धि लगभग 20% है।

इसमें भी चिन्ता की बात यह है है कि 50 वर्ष से कम उम्र के व्यक्तियों में हृदयरोग होने की प्रवृत्ति बढी है एवं हार्ट अटैक (हृदयाघात) होने वालों की संख्या में अभिवृद्धि हुई है। इसमें नियमित व्यायाम करने वाले व्यक्ति भी सम्मिलित हैं। आंकड़े बताते हैं कि पिछले 10 साल में करीब सवा दो लाख भारतीयों की मृत्यु केवल मात्र हार्टअटैक से हुई है |

प्रसिद्ध कॉमेडियन राजू श्रीवास्तव को जिम में व्यायाम करते समय दिल का दौरा पडा एवं 41 दिन तक गहनचिकित्सा प्रक्रिया में रहते हुए भी उनकी मृत्यु हो गई। इसी तरह से अभिनेता सिद्धार्थ शुक्ला और कन्नड़ फिल्मों के

मशहूर अभिनेता पुनीत राजकुमार को भी जिम में व्यायाम करते समय ही हार्ट अटैक (हृदयाघात) आया, फिटनेस ट्रेनर कैजाद कपाड़िया एवं मशहूर कोरियोग्राफर रेमो डिसूजा इत्यादि भी इसी प्रकार से हार्टअटैक से मृत्यु को प्राप्त हुए। ये सभी 50 वर्ष से कम उम्र के व्यक्ति थे। यह केवल ख्यातनाम व्यक्तियों का उल्लेखमात्र है, इसके अतिरिक्त अन्य अनेक लोग व्यायाम करते समय या खेलते समय अथवा श्रम करते समय हार्ट अटैक (हृदयाघात) के शिकार होते आए हैं।

28 फरवरी 2023 को हैदराबाद के सिकंदराबाद में लाल पेठ में बैडमिंटन खेलते समय ही श्याम यादव नामक 38 वर्ष के एक व्यक्ति की हार्ट अटैक से मृत्यु हो गई, जबकि वह प्रतिदिन इसी समय इतना ही खेलते थे। हैदराबाद में ही शादी की विभिन्न रस्मों के क्रम में हल्दी लगाने के दौरान हार्टअटैक से एक युवक की मृत्यु हो गई। इसी तरह फरवरी में ही महाराष्ट्र के नांदेड़ में विवाह-समारोह में नृत्य करते समय एक 19 वर्षीय युवक की मौत हो गई, 67 वर्षीय एक व्यक्ति की सम्भोगप्रक्रिया के दौरान मृत्यु हो गई। कानपुर में क्रिकेट खेलते हुए 32 वर्षीय भानु की बैटिंग करते समय हार्ट अटैक (हृदयाघात) से मृत्यु हो गई। इसी तरह से जनवरी 2023 में एक क्रिकेटर की बॉलिंग करते समय केवल 18 वर्ष की उम्र में हार्ट अटैक (हृदयाघात) से मृत्यु हो गई।

ऐसे सैकड़ों उदाहरण केवल 2023 में ही प्राप्त हो जाएंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यायाम, व्यवाय, भय, त्रास, अति हर्ष आदि ऐसे कारण हैं जिनसे हार्ट अटैक होता है। मन को आश्वासन देने की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि यह प्रायः उन्हीं व्यक्तियों को होता है जो आहार-विहार आदि के परिपालन में स्खलन करते हैं, जिसके कारण उनमें पहले से ही किसी न किसी प्रकार की हृद्विकृति रहती है।

कानपुर के एक समाचारपत्र के अनुसार कानपुर के हृदयरोग संस्थान में 1 जनवरी से 8 जनवरी 2023 के बीच 5273 रोगी हार्ट अटैक (हृदयाघात) के बाद चिकित्सार्थ चिकित्सालय में पहुंचे, इनमें से 51 रोगियों की मौत चिकित्सा-प्रक्रिया के दौरान ही हुई, जबकि 63 रोगी पहले ही हार्ट अटैक (हृदयाघात) से मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे।

यह केवल एक संख्यामात्र है, इसमें आश्चर्यचकित करने वाली एक बात यह है कि इन रोगियों में युवाओं की संख्या में अभिवर्धन हुआ है। चिकित्सा-विशेषज्ञों एवं सांख्यिकी-विशेषज्ञों के सम्मिलित अध्ययन को देखें तो वर्तमान में हृदयरोग से मरने वाले 10 में से 4 रोगियों की उम्र 45 वर्ष से भी कम रही। इन घटनाओं का विश्लेषण करते हुए आधुनिक चिकित्सक कहते हैं कि कुछ लक्षण ऐसे होते हैं जो हृदयरोग की ओर संकेत करते हैं जिनमें अत्यधिक थकावट की अनुभूति, नींद आने में विषमता, अनावश्यक रूप से चिंताग्रस्त होना या शोकग्रस्त होना एवं मंदाग्नि इत्यादि लक्षण प्रमुख होते हैं ।

हृदयरोग के हेतुओं को आयुर्वेद की दृष्टि से देखें तो हजारों वर्ष पहले आयुर्वेद के महर्षियों ने इन सभी परिस्थितियों का उल्लेख कर दिया था जो अब युगानुरूप संदर्भ में भी दिखाई दे रहे हैं। इस संदर्भ में महर्षि चरक के वचन

उल्लेखनीय हैं, यथा-

व्यायामं च व्यवायं च स्नानं चङ्क्रमणानि च|
ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्न बलवान् भवेत्॥ (चरक. चिकित्सा. 3/332)

उपर्युक्त श्लोक में आचार्य ने रोगमुक्त को विशिष्ट चेष्टाएं न करने का निर्देश दिया है, यद्यपि इसमें ज्वरमुक्त का उल्लेख किया है लेकिन यह केवल सांकेतिक है अर्थात् किसी भी रोग से मुक्त व्यक्ति जब तक बलवान् नहीं होता है तब तक व्यायाम, व्यवाय, डुबकी लगाकर के स्नान करना और अत्यधिक चङ्क्रमण (घूमना) न करे। प्रारम्भ में जितने भी उदाहरण दिए गए हैं ये उपर्युक्त हेतु उन सब में घटित होते हैं।

व्यायाम के ऊपर अनेक उदाहरण दिए गए हैं तथा व्यवाय (सम्भोग) का भी एक उदाहरण दिया गया है एवं चङ्क्रमण के भी अनेक उदाहरण मिल सकते हैं, जिनमें एक तो ताजा ही उदाहरण है कि २०२३ में ही काँग्रेस की भारत जोड़ो यात्रा के दौरान एक नेता की केवल चङ्क्रमण करने से ही हार्ट अटैक आ जाने के कारण मृत्यु हो गई। यद्यपि व्यायाम की अनेक विधाओं में चङ्क्रमण सर्वाधिक सुरक्षित व्यायाम है लेकिन यह भी शरीर की शक्ति और स्थिति को देखकर ही किया जाना उपयुक्त है, इस सम्बन्ध में महर्षि सुश्रुत कहते हैं कि-

यत्तु चङ्क्रमणं नातिदेहपीडाकरं भवेत्|
तदायुर्बलमेधाग्निप्रदमिन्द्रियबोधनम्।। (सु.चि.अ.२४)

यहाँ पर यह स्पष्ट कहा है कि चङ्क्रमण भी यदि देह को पीड़ा करने वाला है तो वह नहीं करना चाहिए। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जो अभ्यस्त व्यक्ति है वही चङ्क्रमण (घूमना) करे। सहसा या अधिक देर तक या अधिक दूर तक घूमना शरीर के लिए हानिकारक हो सकता है।

वर्तमान में अधिसङ्ख्य युवा अपने शरीर को चुस्त-दुरुस्त रखने के लिए डाइटिंग करते हैं (जो कि एक तरह का अनशन या कुपोषण का स्वरूप ही है), वर्तमान काल में एक नवीन विधा और है जिसे क्रैश डाइटिंग कहते हैं यह और भी खतरनाक है इसमें तेजी से वजन कम किया जाता है और आहार में न्यूनतम पौष्टिक तत्त्वों का ग्रहण किया जाता है। कुछ लोग वजन कम करने के लिए अत्यधिक व्यायाम करते हैं जो साहसिक कार्यों की गणना में आता है। आचार्य चरक कहते हैं कि साहसिक कार्य नहीं करने चाहिए। साहसिक कार्य का तात्पर्य है- सहसा अपने शरीर की शक्ति को देखे बिना ऐसे कार्य करना जिनका निरन्तर अत्यधिक अभ्यास नहीं हो (सहसा आत्मशक्तिमनालोच्य क्रियत इति साहसं, तत्तु गजाभिमुखधावनादि- चरक. सूत्र. 7/26, चक्रपाणि)। यदि अभ्यास भी हो तो भी अधिक व्यायाम और अधिक चेष्टा करना हानिकारक है और प्रमुख रूप से यही हृद्रोग का कारण है, मुख्य रूप से हृदयाघात का कारण है।

व्यायाम को संक्षिप्त रूप से परिभाषित करते हुए आचार्य चरक कहते हैं कि जो चेष्टा इष्ट हो अर्थात् अभीष्ट हो वह करनी चाहिए तथा उसमें भी मात्रापूर्वक ही करना उपयुक्त है। व्यक्ति को अत्यन्त अभ्यास भी हो तो भी उसे अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिए। ऊपर विभिन्न खिलाड़ियों के तथा विभिन्न प्रकार के व्यायाम करने वालों के जितने भी उदाहरण दिए गए हैं वे सभी अभ्यास होते हुए भी हृदयाघात के शिकार हुए हैं। इसका तात्पर्य यह है कि आचार्य चरक का कहा गया वाक्य यह स्पष्ट निर्देश देता है कि व्यायामसम्बन्धी प्रत्येक कार्य एक नियत मात्रा तक ही करना चाहिए।

इसका भी विश्लेषण करें तो कोई भी चेष्टा या व्यायाम यदि देह की पीड़ा करने वाला हो तो वह भी उपयुक्त नहीं है। वर्तमान में सूचना- संचार व्यवस्था अत्यधिक प्रसरणशील है अतः इस प्रकार के व्यक्तियों के लिए सुनने में आता है कि केवल भ्रमण करने मात्र से ही या अत्यधिक यात्रा करने से भी अथवा थोड़ा तीव्र चङ्क्रमण (जोगिंग) करने से भी हार्ट अटैक (हृदयाघात) के रोगी देखे जा रहे हैं| इस सम्बन्ध में महर्षि चरक स्पष्ट कहते हैं कि-

श्रमः क्लमः क्षयस्तृष्णा रक्तपित्तं प्रतामकः|
अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिश्च जायते|| (चरक. सूत्र. 7/33)

अधिक व्यायाम करने से थकान, क्लम (बाद में भी विना परिश्रम के थकान की अनुभूति होना), धातुओं का क्षय, तृष्णा (प्यास की अधिकता), रक्तपित्त रोग, प्रतमक श्वास, कास, ज्वर और छर्दिरोग (वमनरोग) उत्पन्न हो जाते हैं ।

इसी क्रम में व्यायाम के सामान्य लक्षण बताते हुए कहते हैं -

स्वेदागमः श्वासवृद्धिर्गात्राणां लाघवं तथा|
हृदयाद्युपरोधश्च इति व्यायामलक्षणम् ||

अर्थात् स्वेद का निकलना, श्वास की वृद्धि होना, अङ्गों में लघुता और हृदय आदि में उपरोध अर्थात् रुकावट (इनमें थकान की अनुभूति) यह व्यायाम का लक्षण है।

यहाँ व्यायाम के लक्षणों में "हृदयाद्युपरोधश्च" कहा है जिसका तात्पर्य है हृदय इत्यादि विशिष्ट अवयवों के कार्य में बाधा उत्पन्न होने लग जाए, उसी समय व्यायाम बंद कर देना चाहिए, लेकिन इससे अधिक व्यायाम करने पर हृदय का उपरोध या मस्तिष्क का उपरो ध हो सकता है। अतः हार्टअटैक और ब्रेन हेमरेज के लक्षणों की ओर आचार्य का संकेत है। यद्यपि कुछ आचार्य इस श्लोक को प्रक्षिप्त मानते हैं, लेकिन फिर भी यह सटीक लक्षणों की ओर संकेत करने वाला है, अतः इसे स्वीकार किया जाना चाहिए।

अति व्यायाम के लक्षणों में श्रम, क्लम, क्षय और प्रतामक (तमकश्वास रोग या श्वासाभिवृद्धि) ये 4 लक्षण ऐसे हैं जो सीधे तौर पर हार्ट अटैक (हृदयाघात) को उत्पन्न करने वाले हेतु या उसका संकेत देने वाले प्राथमिक लक्षण माने जा सकते हैं, इसमें प्राचीन महर्षि एवं वर्तमान चिकित्सक एकमत हैं|

इस सम्बन्ध में आचार्य चरक आगे चेतावनी देते हुए कहते हैं कि अभ्यस्त होते हुए भी इन निम्नलिखित प्रक्रियाओं को अधिक मात्रा में नहीं करना चाहिए उचित मात्रा में भी सावधानी पूर्वक किया जाना ही अधिक उपयुक्त है, यथा-

व्यायामहास्यभाष्याध्वग्राम्यधर्मप्रजागरान्|
नोचितानपि सेवेत बुद्धिमानतिमात्रया|| (चरक. सूत्र. 7/34)

अर्थात् बुद्धिमान पुरुष व्यायाम, हंसना, बोलना, मार्गगमन करना, मैथुन करना तथा जागरण इन सब का अभ्यास होने पर भी अधिक मात्रा में सेवन नहीं करे।

यहाँ यह भी स्पष्ट जान लेना चाहिए अनभ्यस्त को तो अति मात्रा में व्यायाम करना ही नहीं चाहिए लेकिन अभ्यस्त को भी अति मात्रा में व्यायाम करना निषिद्ध है, इसे चक्रपाणि ने स्पष्ट करते हुए कहा है है कि-

यद्यप्यतिव्यायामो निषिद्धस्तथाऽपीह पुनरभिधीयते अतिभाष्यादिष्वपि तद्दोषश्रमक्लमादिप्राप्त्यर्थं; यदि वा पूर्वमनभ्यस्तव्यायामातिसेवा निषिद्धा, इह तु अभ्यस्तस्यापि निषेधः| यदाह- नोचितानपि; उचितानप्यभ्यस्तानपीत्यर्थः| अपिशब्दादनभ्यस्तानां नितरां निषेधो लभ्यते| (चक्रपाणि)

अर्थात् यद्यपि अति व्यायाम निषिद्ध है फिर भी जोर से बोलना या भाषण देने आदि में भी उसके दोष श्रम-क्लम आदि की प्राप्ति के लिए यहाँ उसका पुनः कथन किया है अथवा पहले अनभ्यस्त व्यायाम का अति सेवन निषिद्ध है तो यहाँ पर अभ्यस्त व्यायाम के भी अधिक सेवन का निषेध है, जैसे कि कहा गया है "नोचितानपि" जिसका अर्थ है उचित भी अर्थात् अभ्यस्त व्यायाम का भी अधिक सेवन नहीं करना चाहिए, अपि शब्द से अनभ्यस्त व्यायाम का सर्वथा निषेध प्राप्त होता है।

इस निर्देश का यदि उल्लंघन किया जाता है, तो वह व्यक्ति सहसा विनाश को प्राप्त करता है यथा-

एतानेवंविधांश्चान्यान् योऽतिमात्रं निषेवते|
गजं सिंह इवाकर्षन् सहसा स विनश्यति||३५|| चरक सूत्र 7/35

अर्थात् इन कर्मों का तथा उनके समान अन्य कर्मों का जो पुरुष अधिक मात्रा में सेवन करता है वह उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है जिस प्रकार सहसा हाथी को खींचता हुआ सिंह विनष्ट हो जाता है।अतः संक्षेप में यही समझना चाहिए कि व्यायाम नियत रूप से नियमित रूप से मात्रापूर्वक ही करना चाहिए। अयुक्तियुक्त व्यायाम सर्वदा हानिकारक होता है।

आस्तिकता की अनिवार्यता

गोपीनाथ पारीक गोपेश
अध्यक्ष
राजस्थान आयुर्वेद विज्ञान परिषद्

चरकसंहिता सूत्रस्थान के यज्जःपुरुषीय अध्याय में आचार्य ने हितकारी - अहितकारी पदार्थों की एक किंवा चरणों की एक लम्बी सूची प्रस्तुत की है। वहाँ पर सबसे मुख्य त्याज्य में 'नास्तिक' को कहा गया है - पातकेभ्य: परं चैतत्पातकं नास्तिकग्रह:' | नास्तिक की दृष्टि में परीक्ष्य और परीक्षा, कर्त्ता और कारण, कर्म और कर्मफल ही नहीं अपितु देव, ऋषि, सिद्ध, विद्वान् आदि सभी मिथ्या होते हैं, जो सर्वथा अनुचित है। अत: नास्तिक के संग को सबसे निकृष्ट पाप कहा गया है।

भारतीय जीवनपरम्परा के आधारभूत शास्त्र चार हैं - श्रुति, स्मृति, पुराण और आगम। वेद, निगम आदि श्रुति के पर्याय हैं। धर्मशास्त्र स्मृति का पर्याय है। सर्ग-प्रतिसर्ग आदि पाँच लक्षणों से युक्त शास्त्र को पुराण कहा जाता है। भगवान शंकर के मुख से निकले हुये (आगत) और पार्वती द्वारा धारित तथा भगवान् वासुदेव द्वारा समर्थित होने के कारण इन्हें आगम शास्त्र कहा गया है। ये आगम तीन हैं - वैष्णव आगम, शैव आगम तथा शाक्त आगम। ये सभी शास्त्र ईश्वर की सत्ता को स्वीकारते हुए आस्तिकता पर बल देते हैं।

वेद का अर्थ किसी पुस्तक से नहीं है। इसका अर्थ आध्यात्मिक नियमों के उस भांडार से है, जिसे विभिन्न व्यक्तियों ने विभिन्न कालों में संचित किया। इन नियमों की खोज करने वाले ऋषि कहलाये और पूर्ण पुण्य प्राणी के रूप में हम उनका सम्मान करते हैं। वेदों के ज्ञानमय प्रकरणों की उपनिषदों में विशद व्याख्या की गयी है। इनमें ईश्वर की दार्शनिक व्याख्या उच्चस्तर पर की गयी है। उपनिषदों का यह ज्ञानकाण्ड हमारे सनातन धर्म का आध्यात्मिक अंश है। इसका नाम वेदान्त भी है। वेदान्त अर्थात् वेदों का अन्तिम भाग, वेदों का चरम लक्ष्य। वेदान्त के रहस्यों को स्वामी विवकानन्द जी ने भी व्यापक प्रचार-प्रसार किया है-

जफना की जनता के समक्ष स्वामीजी ने जो भाषण दिया, उसमें कहा गया कि " यह सृष्टि किसने की ? ईश्वर ने। अंग्रेजी में गॉड' शब्द का जो प्रचलित अर्थ है, उससे मेरा मतलब नहीं? निश्चय ही उस अर्थ में नहीं, बल्कि उससे काफी भिन्न अर्थ में प्रयोग का मेरा अभिप्राय है। अंग्रेजी में और कोई उपयुक्त शब्द नहीं है। संस्कृत ब्रह्म शब्द का प्रयोग कर ना ही

सबसे अधिक युक्तिसंमत है। वही इस जगत् प्रपंच का सामान्य कारण है। ब्रह्म क्या है? वह नित्य, नित्य शुद्ध, नित्यबुद्ध, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, परम दयामय, सर्वव्यापी निराकार, अखण्ड है। वह इस जगत् की सृष्टि करता है। इस सर्जन की शक्ति निरन्तर गतिशील है। वह अनन्तकाल से सृष्टि रच रहा है. - वह कभी आराम नहीं करता। गीता का वह अंश स्मरण करो जहाँ श्रीकृष्ण कह रहे हैं - यदि मैं क्षण भर के लिये विश्राम लूँ, तो यह जगत् नष्ट हो जाय (गीता 3-24) "

सन्तप्रवर श्री दादू दयाल जी महाराज इसी ब्रह्म की चराचर जगत् में निरन्तर परिपूर्ण रूप से विद्यमानता को यो व्यक्त करते हैं -

दादू ब्रह्म जीव हरि आतमा खेलें गोदी कान्ह ।
सकल निरन्तर भर रह्या साक्षीभूत सुजान ॥

विगत शताब्दी के प्रथम दशक से पांचवे दशक तक सृष्टि सम्बन्धी मसलों पर यदि टालस्टाय, रोभ्यां रोला, गोर्की, जार्ज बर्न ईशा, बटेड रसल, टी. एस इलियट, लिनयू तांग, रवीन्द्र नाथ टैगोर, महात्मा गाँधी के वक्तव्यों को मार्ग दर्शक सिद्धान्तों के रूप में स्वीकार किया जाता था, तो उनके साथ अलबर्ट आइंस्टीन का नाम भी आता था। इस आइंस्टीन ने वेदान्त और विज्ञान के सुखद सामंजस्य के दर्शन किये थे।

प्राचीन काल के चार्वाक, बौद्धों आदि तथा आधुनिक काल के कार्ल मार्क्स, लेनिन आदि नास्तिको ने उस ब्रह्म सत्ता रूप परमेश्वर को स्वीकार नहीं किया। इनका मानना है कि भौतिक वस्तुयें भौतिक कारणों से ही बनी है।

यद्यपि धर्म, दर्शन और अध्यात्म पर्यायवाची नहीं है, किन्तु जब विज्ञान बनाम इनका प्रश्न आता है तो इन सबको एक ही मान लिया जाता है। ये सब अतीन्द्रिय अनुभव के आश्रित हैं और विज्ञान प्रयोगशाला के स्थूल प्रयोगों पर निर्भर है। ब्रह्मविद्या और भौतिक विज्ञान दोनों की साधना के लिये एकाग्रता अनिवार्य है। जब मनुष्य आस्तिकता के साथ वैज्ञानिक साधना में संलग्न होता है तो उसका चरम लक्ष्य व्यापक, गहन, सूक्ष्म और आन्तरिक होता जाता है। वह फिर भौतिक मूल्यों का अतिक्रमण करके आध्यात्मिक परम श्रेयस् को ओर अग्रसर होता जाता है। आध्यात्मिक सत्य प्राकृतिक वस्तुओं के सत्य से भिन्न होता है। सूर्य और चन्द्र के अस्त हो जाने पर भी और अग्नि के बुझ जाने पर भी उसका अमित प्रकाश आत्मा में आलोकित होता है -आत्मैवास्य ज्योतिर्भवति (बृहदारण्यकोपनिषद्) । यदि कोई आस्तिकता के अभाव में भी कुछ प्राप्त करने का दंभ भरता है, तो वह पारसमणि को खो कर घुंघची पा गया है -

ताहि कबहुँ भल कहई न कोई ।
गुंजा गहई परसमनि खोई ॥

'विजयिनी मानवता हो जाय ' (कामा- यूनी) मानवता को विजय प्राप्त करने के लिये वेद (ब्रह्म विज्ञान), स्मृति (समाज विज्ञान) और आधुनिक विज्ञान (भौतिक विज्ञान) का समन्वय आवश्यक है। इस त्रिवेणी की सहसाधना के बिना हम सत्य के यथार्थ को, यथार्थ के सत्य को नहीं पा सकते। कोई भी विज्ञान जब वह आस्तिकता से अनुस्यूत होता है तब ही मानवोपकारक बन सकता है। विद्वन्मुनि प्राणाचार्य कविराज श्री रत्नाकर शास्त्री ने कहा है कि -

विज्ञान का मानव के साथ कोई सम्बन्ध जुड़ सकता है, तो वह आस्तिकता के द्वारा ही, अन्यथा विज्ञान का मानव से कोई सम्बन्ध है ही नहीं। यह ठीक है कि विज्ञान से सब कुछ जाना जाता है, परन्तु उस जानने वाले को किससे जाना जाय ? सम्पूर्ण विज्ञान एक विशाल ज्ञान का क्षेत्र है, यदि इसमें क्षेत्रज्ञ नहीं, तो इसका ज्ञाता कौन है?" इन सब का उत्तर आस्तिकता के बल पर ही दिया जा सकता है। आस्तिकवाद के सबसे प्रबल समर्थक वेद है और आयुर्वेद विज्ञान की वेदों में पूर्ण आस्था है। आयुर्वेद के मूलग्रन्थों में पदे पदे यह आस्था अभिव्यक्त हुई है।

चरकसंहिता के शरीर स्थान अध्याय प्रथम में - 'प्रभवो न ह्यनादित्वात् विद्यते परमात्मन:', 'अव्यक्तमात्मा क्षेत्रज्ञः शाश्वतो विभुरव्ययः, विभुत्वमत एवास्य यस्मात् सर्वगतो महान्' आदि वर्णित वाक्य इस परम सत्ता की ओर ही इंगित करते हैं। सुश्रुतसंहिता के शारीर स्थान अध्याय प्रथम में भी "स्वभावमीश्वरम्- ." इस श्लोक द्वारा ईश्वर की सत्ता में सहमति प्रकट की गयी है।

आचार्य चरक ने पुरुष के दो भेद किये हैं- एक अनादि और दूसरा हेतुज । अनादिपुरुष नित्य और हेतुजात (संयोगज) पुरुष अनित्य माने गये हैं। अनादि पुरुष सत्य, अहैतुक और नित्य माने जाते हैं तथा हेतुज पुरुष असत्, संयोगज और अनित्य कह कर निर्देष्ट हुए हैं। मानव शरीर में उस शाश्वत पुरुष की अस्तित्वोपलब्धि के लक्षण भी आचार्य चरक ने बताये हैं कि- प्राण- अपान, निमेषादि जीवन, मन की गति, एक इन्द्रीय से दूसरे इन्द्रिय में मन का संचार, इन्द्रियार्थों में इन्द्रियों की प्रेरणा, इन्द्रियार्थों का ग्रहण, स्वप्न में देशान्तर संचार, इच्छा, सुख, दुःख, प्रयत्न, चेतना, धृति, स्मृति आदि ये परमात्मा के लिंग हैं।

'विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया' (रघुवंश) कालिदासोक्त इस कथन को विशद करते हुये आयुर्वेद अप्रतिम विद्वान् स्व. डा. श्री. भास्कर गोविन्द घाणेकर लिखते हैं कि - यह विषामृतत्व तीन बातों पर निर्भर होता है - 1. ज्ञान - औषधार्थ प्रयुक्त किये जाने वाले द्रव्यों के नाम-रूपादि का तथा उनके गुणधर्मों का यथार्थ ज्ञान। इसके होने से वे अमृतसम स्वास्थ्यकर और न होने से वे विषसम अस्वास्थ्यकर होते हैं। २. योजना - केवल नाम रूप गुणादि के ज्ञान से फल प्राप्त नहीं होता, रोग व रोगी का ठीक परीक्षण कर के उनकी योजना करनी पड़ती है। ठीक योजना करने से अमृतमय और आयुक्त योजना करने से विषसम फल मिलता है। 3. ईश्वरेच्छा- सर्वशक्तिमान परमेश्वर विष को अमृत और अमृत को

विष कर सकता है, इस विषय में अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है-

गरल सरल पान सुमन समान शूल,
होनी अनहोनी अनहोनी होनी होई है।

दैवव्यपाश्रय औषध का प्रथम उल्लेख (चरक०सू० 11) इसी बात को दुहराता है। और अन्त में यह प्रसंग स्मरण रखने योग्य है महाभारत के युद्ध में अर्जुन का रथ भीष्म के बाणों से जल गया था, किन्तु श्री कृष्ण ने उस रथ को बनाये रखा। वे स्वयं रथ और घोडे बन गये। जब युद्ध समाप्त हुआ तो अपने शिविर में पहुँचते ही श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा. 'अर्जुन! आज तुम पहले उतर जाओ। अर्जुन को यह बात नयी लगी। फिर भी अर्जुन कृष्ण की आज्ञा के अनुसार स्वयं रथ से उतर गया और अपने सारे शस्त्रास्त्रों को भी उतार लिया। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण रथ से कूदे और वह रथ घोड़ों समेत जल कर राख हो गया। अत: हमें ईश्वर की इस शक्ति को समझना होगा। 'योगक्षेमं वहाम्यहम् की पालना में सतत संलग्न उस परमात्मस्वरूप श्रीकृष्ण के लिये व्यासदेव ने मुक्तकंठ से गाया है-

ऐते चांशकला: पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृड्यन्ति युगे युगे ।।

-श्रीमद् भागवत 1-3-28

भगवान् के कई अन्य अवतार अंशावतार या कलावतार है किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण तो स्वयं पूर्णावतार हैं। जब जब इनके भक्त लोग किसी भी प्रकार के दैत्यों से व्याकुल होने लगते हैं, तब युग युग में समय समय पर अनेक रूप धारण कर भगवान् उनकी रक्षा करते हैं।

धर्म की परिभाषा विस्तृत है, उसे कई रूपों में अभिव्यक्त किया है, उनका यथा शक्य निर्वाहन आस्तिकता के लिये आवश्यक भी है, परन्तु यदि कहा जाय तो परम धर्म ईश्वर की शरणागति ही है और इसी से सब धर्म सध जाते है। सार रूप में यही आस्तिकता है। धर्म सर्वधर्मान् परित्याज्य मामेकं शरणं व्रज गीता में कहे गये इस उद्बोधन को ध्यान में रखते हुये आस्तिकता को हृदयङ्गम कर हमें अपने जीवन को सफल सार्थक बनाना चाहिये - यही मेरा अनुरोध है। शुभं भूयात्।

महावीर विक्रम बजरंगी ।
कुमति निवार सुमति के संगी ।।

भारतीय विद्या मनीषी
पं. महेश दत्त शर्मा 'गुरुजी'

महावीर विक्रम बजरंगी। कुमति निवार सुमति के संगी ।।

सरलार्थ :- हे हनुमान जी। आप महावीर है। विशेष पराक्रम वाले है, वज्र के समान अंग वाले है। दुर्बुद्धि को निवारण कर सुबुद्धि के संगी अर्थात सुबुद्धि वालों के सहायक है।

विशेषार्थ :- महावीर नाम से गोस्वामी जी ने 'ईष्ट रूप' की वन्दना की इस प्रकार भक्त कवि तुलसी ने तीन बार हनुमान वन्दना की।

महावीर हनुमान कहि, पुनि कह पवन कुमार। इष्ट, भक्त, अरू, देव, लखि, वन्दऊँ कवि त्रयबार ।।

इस महावीर नाम की विशेषता देखकर गोस्वामी जी ने इस नाम के बाद हनुमान जी की वन्दना की।

'महावीर विनबऊँ हनुमाना' मैं उन हनुमान जी से विनय कर रहा हूँ जो महावीर है। वीर कौन है ? -

महा अजय संसार रिपु, जीति सकई सो वीर ।। लंका काण्ड/८०क ।। प्रभु श्रीराम भी वीर ही है। 'हा जग एक वीर रघुराया' परन्तु आप राघव कर कमल स्पर्श से महावीर बन गये।

पाछे पवन तनय सिरू नावा, जानि काज प्रभु निकट बोलावा। परसा सीस सरोरूह पानी, कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी।। कि.का./२३/१०।।

कार्य सिद्धि का अनुमान हनुमान से ही था। अतः समीप बुलाकर मुद्रिका प्रदान करना महावीरता का प्रमाण-पत्र देना ही है। यह नाम हनुमान जी का विशेषण है। इनकी यह विशेषता किष्किन्धा, सुन्दर एवं लंका काण्ड में पूर्ण दृष्टिगोचर होती है।

आपकी महावीरता को देखकर इन्द्र, लोकपाल विष्णु, रूद्र, ब्रह्मा की आंखे चकाचौंध हो गई -

कौतुक बिलोकि लोकपाल हरि हर विधि, लोचननि चकाचौंध चित्तनि खभार सो।। बल कैंधों वीर रस, धीरज कै साहस के, तुलसी शरीर धरे, सबनि के सार सो ।। ह.बा./४।।

इनकी महावीरता की भूरी-भूरी प्रशंसा द्वापर में द्रोण एवं पितामह भीष्म ने भी की।

भारत में पारथ के, रथ केतु कपिराज, गाज्यो सुनि कुरू राज, दल हल बल भो। कहयो द्रोण भीष्म समीर सुत 'महावीर', वीर रस वारिनिधि, जाको बल जल भो ।। भीषम कहत मेरे अनुमान हनुमान, सारिखो त्रिकाल, न त्रिलोक महाबल भो ।। हनु.बा./७।।

त्रेता में इनकी बल की सराहना जामवन्त ने की।

पवन तनय के चरित सुहाये। जामवन्त रघुपति हि सुनाये ।। सु.का./२८ ।।

कलिकाल में गोस्वामी जी ने वन्दना कर सराहना की।

महावीर बिनवऊँ हनुमाना, राम जासु जस आप बखाना ।।

इस प्रकार सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलि में आपका यश वेद भगवान बखान करते है।

बांकुरो वीर विरूदैत विरुदावली, वेद बन्दी वदत पैज पूरो ।। हनु.बा./३ ।।

महाबल सीम, महाभीम महाबान इत, 'महावीर' विदित बरायो रघुवीर को ।। हनु.बा./१० ।।

महावीर बांकुरे, बराकी बांह पीर क्यों न, लंकनी ज्यों लात घात ही मरोर मारिये ।। हनु.बा./२३ ।। गोस्वामी जी महाकष्ट के समय 'महावीर' नाम की ही इन्हें शपथ देकर कष्ट निवारण हेतु प्रार्थना की।

आन हनुमान की दोहाई बलवान की। सपथ 'महावीर' की जो रहे पीर बाँह की ।। हनु.बा./२६ ।।

अत: यह महावीर नाम पीड़ा शामक है। इसी ग्रन्थ में **"भूत-पिशाच निकट नहीं आवे, 'महावीर' जब नाम सुनावै।"**

जिनके हृदय में रघुवीर विराजित है। रघुवीर अर्थात् जिसमें निम्न पांच वीरता का समावेश हो। वह रघुवीर है -

1. विद्यावीर आप में सर्वज्ञता है।
2. दया व दानवीर - सुग्रीव एवं विभीषण पर दया की।
3. युद्धवीरता - खरदूषण, बाली व रावण वध किया।

4. धर्मवीरता धर्म रक्षार्थ दारापहार बाली एवं रावण को दण्ड देकर संहार किया।

5. त्याग वीरता सुग्रीव व विभीषण को राज दिया।

इस प्रकार षट्वीरता लिए श्री राम को भी आप हृदय में धारण किये हो तब आपका नाम 'महावीर' है।

विक्रम बजरंगी

आपके विक्रम पराक्रम की प्रशंसा पराम्बिका जानकी जी ने मुक्त कण्ठ से कर पूर्ण विश्वास प्रकट किया। यथा

प्रेषयिष्यति दुर्धर्षो रामो न ह्य परीक्षितम्,

पराक्रमम् विज्ञाय मत्सकाशं विशेषतः ।। वा.रा.सु.का/३६/११।।

अर्थात् श्री जानकी जी ने श्री हनुमान जी से कहा कि शत्रु रावण द्वारा कभी नहीं पराजय होने वाले प्रभु तुम्हें परीक्षोत्तीर्ण कर अर्थात् सर्व प्रकार परीक्षा लेकर ही दूत रूप में मेरे पास भेजा। अतः आप पूर्ण विक्रम पराक्रम परिपूर्ण हो।

पाछे पवन तनय शिर नावा, जानि काज प्रभु निकट बुलावा।

इस प्रकार से 'हनुमत जनम सफल करि माना'।

अतः प्रभु ने भी विक्रमवान समझा और भगवती सीता जी ने भी विक्रमवान कहा। विनय पत्रिका में आपको मृगराज विक्रम कहा - 'आपके ऐश्वर्य को प्रकट किया।

जयति मर्कटाधीश विख्यात मृगराज विक्रम ।। वि.प./३६ ।।

इन्द्र के वज्र के मान को हनन् कर आप हनुमान ही नहीं वरन् वज्र अंगी (बजरंगी) नाम से पुकारे जाने लगे। अर्थात् आपके गुणधर्म आपके उपासक सेवक में भी आते है। अत: बजरंगी की उपासना करने वालों का शरीर भी परिपुष्टता प्राप्त करता है। आज भी प्रायः 'हनुमान, बजरंग-व्यायाम शाला' आपके इन दो नामों से अधिकतर पाई जाती है। अतः इस ग्रन्थ का विक्रम बजरंगी नाम आपके उपासक को शारीरिक एवं आत्मिक बल प्रदान करता ही है। आपका सर्वाङ्ग वज्र ही नहीं वज्र सार है।

वज्रसार सर्वाङ्ग भुज दण्ड भारी ।। वि.प./२६/३।।

'जयति जय वज्रतनु दशन नख मुख विकट सर्वाङ्ग वज्र का वर्णन विनय पत्रिका २५/७।। विहङ्गमाय शर्वाय

वज्र देहाय ते नमः ।। नारद पुराण ७५/१०२।।

आप वज्रअंग ही नहीं वज्र की कठोरता के मद को भी चिबुक से चूर्ण करने वाले हो।

जाकी चिबुक चोट चूरण कियो। रद मद कुलिस कठोर को ।। वि.प./३१ ।।

कुलिस कठोर तन जोरू परे रोर रन ।। हनु.बा./१०।।

अतः विक्रम बजरंगी नाम स्मरण शत्रु संहारक है एवं यह नाम कुमति, कुबुद्धि का निवारक एवं सुमति में सहायक है। समुन्द्रोल्लघंन, वाटिका उजाड़ना, लंका जलाना, रावण की सभा में सभीत देव दिग्पति आदि को देखकर अपने प्रभु की निर्भयता से प्रशंसा करना आपके बल, विक्रम पराक्रम के प्रत्यक्ष प्रमाण है। 'नारद पुराण' में वज्रदेह रूप में स्तुति है।'विहङ्गामाय सर्वाय' वज्र देहाय ते नमः ।। ना. पु. पूर्व खण्ड। 'कुमति निवार' -

निसिचरी लंकनी ने कुमतिवश इन्हें सठ एवं चोर कहा। मुष्ठी प्रहार कर कुमति लंकिनी सुमति के वश होकर इन्हें नगर प्रवेश की आज्ञा ही नहीं दी वरन् इन्हें अपने प्रभु का स्मरण भी कराया। 'हृदय राखि कोशल पुर राजा' कुमति सुमति में बदल गई। 'जो सुख लव संत संग' राम कृपा दृष्टि का बखान कर दिया। राम कृपा कर सुमति के भण्डार श्री हनुमान जी निर्मल मति प्रदा माँ जानकी के परम प्रिय पुत्र होने के कारण इन्हें माँ की कृपा प्राप्त है -

जनक सुता जग जननी जानकी, अतिसय प्रिय करूणानिधान की । **जासु कृपा निर्मल मति पायऊ ।। बा.का./१७/७।।**

अतः ये कुमति निवारक एवं सुमति के संगी है। विभीषण के शब्दों में **'सुमति कुमति सबके उर रहहि। नाथ पुराण निगम अस कहहिं ।। सु.का./४०/५।।**

सभी के हृदय में सुमति कुमति का निवास है। यह श्रुति सम्मत एवं पुराण सम्मत है। इन दोनों की प्रबलता रात दिन की तरह है। कभी सुमति प्रकट हो जाय और कभी कुमति। 'कालकर्म वश होहिं गुसाई, बरबस रात दिवस की नाई' पर हमें कैसे पता लगे कि हमारे हृदय में कब कुमति है और कब सुमति की प्रधानता है? गोस्वामी पाद की दिव्य दृष्टि इसे जानने का सूत्र दे रहे हैं। 'तब उर कुमति बसी विपरीता। हित अनहित मानहूं रिपु प्रीता ।' जब हम अपने हितेशी को अपना शत्रु मानने लगेंगे और अनहित करने वालों में मित्र भाव परिलक्षित हो। समझो कुमति का आगमन। ऐसी दशा में व्यक्ति सही निर्णय नहीं ले पाता है।पथ विचलित हो जाता है। शुभ चिन्तक विभीषण ने दशानन को बहुत समझाया।

'जो आपन चाहै कल्याना, सुजस सुमति शुभ गति सुख नाना।' विभीषण कुमति निवारक हनुमान जी से मिल

चुका है। हनुमान जी उसके सहयोगी साथी बन चुके है। रावण का श्री हनुमान जी से मिलन अवश्य हुआ। सुमति हेतु अपने स्वामी की स्तुति कर उनका दूत कहकर सुबुद्धि हेतु प्रेरित भी किया पर कुमति का कुप्रभाव कुसमय पर जिसके मन को प्रभावित कर रहा हो उस समय सुमति प्रदा का उपदेश समझ में आना असम्भव था तथा सुमति प्रद स्थल भी अनुकूल नहीं था। राज दरबार में राजा को उपदेश देना उचित नहीं। उपदेशक ब्रह्म पाश में बंधा था। उपदेश लेने वाला सिंहासन पर बैठा था। सर्व प्रकार कुसमय था। सभी को निराशा होगी। महारानी मन्दोदरी माल्यवन्त एवं विभीषण सब समझ गये।

तब उर कुमति वसी विपरीता ।। सु.का./४०/७।।

इससे तो यही संकेत है कि अगर कुमति की प्रबलता हमारे हृदय में हो गई हो तब महावीर विक्रम बजरंगी कुमति निवार व सुमति के संगी का आश्रय लेना चाहिये।

कुमति निवार :-

आप बाली की कुमति को देखकर सभीत सुग्रीव के सचिव बनें व संगी बन कर करूणानिधान श्रीराम से मित्रता करा दी व सुमति के संगी बने रहे। आपने सुरपति इन्द्र की कुमति का हरण कर सुमति में परिणित कर दिया। घटना -

पवन नन्दन हनुमान देव नन्दन है और इन्द्र राहु की सहायतार्थ वज्र प्रहार कर दिया। पवन की गिनती देवताओं में है। उनके पुत्र भी देव पुत्रहै। सूर्य भी देव है। पवन देव पुत्र हनुमान ने सूर्य को बचाया। देवराज होकर भी राहू की तरफ से वज्र प्रहार जैसा घृणित कार्य किया गया। इस कार्य को देखकर पवन देव ने चलना बन्द कर दिया। अतः संसार के समष्टि श्वास बन्द हो गये। लज्जित होकर पवन से इन्द्र ने क्षमा मांगी। तब पवन नन्दन ने सूर्य को मुंह से बाहर निकाला और पवन अपनी नित्य गति से प्रवाहित हुए। इस प्रकार इन्द्र की कुमति का निवारण कर सुमति में बदल दी।

बालिवध के पश्चात् सुग्रीव भी राज धनकोष आदि प्राप्त कर पदाभिमानी होकर अपने कर्त्तव्य को भूल गया तब 'इहाँ पवन सुत करहि विचारा, रामकाज सुग्रीव बिसारा' उसी क्षण आपने सुमति का संग करा कर कर्तव्यज्ञान प्रकाशित किया। सुग्रीव की सुमति के विकास हेतु आपने ही 'साम, दाम, दण्ड, भेद चारों नीतियों का बखान कर सुमति प्रदान की।

निकट जाई चरनन्हि सिरू नावा, चारिहूं विधि तेहि कहि समुझावा।

सुमति के संगी :-

दसानन भ्राता विभीषण से आप मिले और जान गये कि यह 'सुमतिवान' है। 'राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा, हृदय

हरष कपि सज्जन चीन्हा।' यह जानकर कि यह सुमति वान सज्जन स्वभाव का व्यक्तित्व इस निसिचर निकर नगर लंका में कैसे अपना जीवन निर्वाह कर रहा है। इससे मुझे हठपूर्वक परिचय कर इस सुमति वान का सहयोगी संगी बनना चाहिये। विभीषण की लंका में रहनि। 'जिमिदसनन्हि महुँ जीभ बिचारी' सुनकर आप द्रवित हो गये और अपने प्रभु श्रीराम जी की रीति, प्रीति प्रतीति का बखान कर दिया -सुनहु विभीषण प्रभु कै रीति। करहिं सदा सेवक पर प्रीति ।। सु.का./६/७।।

ऐसे उदार प्रीति की रीति के चरण शरण में जब विभीषण आये तब सुग्रीवादि ने शरणागत विभीषण का विरोध किया - 'जानि न जाइ निसाचर माया, कामरूप केहि कारण आया' प्रभु ने भी सखा सुग्रीव को नीतिज्ञ कहा।- 'सखा नीति तुम्ह नीकि विचारी' परन्तु आप प्रीतिवान बने रहे। 'मम पन सरनागत भयहारी' कहकर, सुमति के संगी हनुमान जी के बचनो को सत्य कर दिया। तब श्री हनुमान जी ही प्रसन्न हुए।

सुनि प्रभु बचन हरषि हनुमाना, सरनागत वच्छल भगवाना ।।

आप विभीषण को बिना मान के अपने नाम के आगे से मान को घटा कर सम्मान से प्रभु की सरनागति हेतु लेने चले।

जय कृपाल कहि कपि चले, अंगद 'हनु' समेत ।।

आदर पूर्वक श्री विभीषण श्री को आगे कर करूणाकर श्री रघुनन्दन के शरण में ले आये। ऐसे सुमति विभीषण के संगी बनकर आप हनुमान चालीसा में विश्व विख्यात हुए। 'कुमति निवार सुमति के संगी' बनकर विभीषण जी को प्रभु के प्रिय ही नहीं, अतिसय प्रिय बना दिया।

सुनु लंकेश सकल गुन तोरे। ताते तुम्ह 'अतिसय' प्रिय मोरे ।। सु.का./४८/१।। जहाँ सुमति तहाँ सम्पति नाना।

जहां कुमति तहं विपति निदाना ।। सु.का./४०/८।।

फलश्रुति - श्री हनुमान चालीसा पाठ से कुमति नष्ट होती है। सुमति आ जाती है। क्योंकि हनुमान चालीसा पाठ में प्रभु नाम भी विद्यमान 'रामलखन सीता मन बसिया, अन्तकाल रघुपति पुर जाई' आदि एवं श्री प्रभु एवं भक्त हनुमान जी के भी नाम स्मरण है।

वैष्णव परम्परा

महन्त हरिशंकरदास वेदान्ती
अध्यक्ष
श्री रघुनाथ मंदिर ट्रस्ट, ढेहर का बालाजी, जयपुर

धर्म के विषय में वेद, स्मृति इतिहास, पुराण आदि सभी भारतीय ग्रन्थों में बहुत चर्चायें मिलती हैं। मानव से रक्षित धर्म मानव का रक्षण करता है और मानव से अरक्षित धर्म मानव का नाश कर देता है ऐसा मनुजी का कथन है। समस्त भारतीय आचार व्यवहार का आधार धर्म ही है। जिसके आचरण से सायुज्यमुक्ति की प्राप्ति हो वह धर्म है। ऐसा दर्शन शास्त्रियों का मत है। भारतीय जनता के व्यवहारों में इसे करना चाहिये, इसे नहीं करना चाहिये ऐसा करने से धर्म होता है ऐसा करने से अधर्म होता है इस प्रकार के मानव समूहों के दैनिक व्यवहार के मूल में धर्म ही अचल नींव के रूप में देखने में आता है। सम्प्रति भारत या विश्व में अनेकों प्रकार के मानव वर्ग है उन सभी का आचार व्यवहार एवं दैनिक कर्म धर्म के ऊपर ही आधारित है अतः भारतीय शास्त्रों में धर्म के विषय में 'बहुत गहराई से चर्चा की गयी वह अनेक शास्त्रों में अनेक प्रकार से उपलब्ध हो रहा है। अभी हमारा लक्ष्य श्रीवैष्णव धर्म के विषय में संक्षिप्त चर्चा करने का है, श्री वैष्णवाचार्यों ने वेद एवं वेद के अविरुद्ध शास्त्रों के आधार पर धर्म की गहन चर्चा की है, श्री वैष्णवाचार्यों के समय-समय का अवतार धर्म विरुद्ध आचरणों का निराकरण कर वेद शास्त्रादि सम्मत धर्म का प्रचार-प्रसार कर मानव समाज को सर्वेश्वर श्रीरामशरणाभिमुखी करना रहा है। उसी धर्म व्यवस्था के संस्थापन हेतु अवतरित आचार्योंमें से सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के साक्षात् अवतार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी हुए हैं उन्हीं आचार्य श्री से मानव समूहों के कल्याण हेतु विशद रूप से प्रचारित अन्य सभी धर्मों की अपेक्षा मुख्य रूप से परिगणित श्रीवैष्णव धर्म है। उन्हीं श्री आनन्द भाष्यकारजी के उत्तरवर्ती धर्मसंरक्षक एवं धर्म प्रचारकाचार्य श्रीखीजीदेवाचार्य जी हुए हैं उन्हीं के उत्तरवर्ती आचार्य परम्परा में वर्तमान आचार्यपीठाधीश श्रीखोजीदेवाचार्य पीठाधीश्वर श्रीनारायणाचार्यजी वर्तमान में है। आपके धर्म विषयक परमार्थपरायणता धर्म पालन में चुस्तपनाओं को पिछले कई वर्षों से सुनते आया था उनके साक्षात् सत्संग का लाभ का सुअवसर प्राप्त नहीं हो पाया था 'विनु सतसंग विवेकन होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई इस विश्वकवि श्रीतुलसीदासजी के उक्ति के अनुसार सर्वेश्वर श्रीसीतारामजी की असीम कृपा के परिणामस्वरूप 1998 से श्रीब्रह्मपीठाधीश्वरजी के सत्संग का लाभ प्राप्त होता आ रहा है। श्रीकाठियापरिवाराचार्यजी अपनी दैनिक क्रियाओं से निपटने के बाद मार्मिक सत्संग में श्रोताओं के भावों के अनुसार

उपदेशामृत का परिवेषण करते हैं। श्रीखोजीदेवाचार्य पीठाधीश्वर सत्संगति के प्रवाह में अन्य धर्मों की अपेक्षा अहिंसा धर्म को अधिक महत्व देते हैं। वेदवाणी भी किसी भूतों की हिंसा न करे, यही उपदेश देती है। पुराणादि शास्त्रों में भी ऐसा ही उपदेश प्राप्त होता है-

अहिंसा के समान दान नहीं, अहिंसा के समान तप नहीं, पुण्य कर्म को बढ़ाने वाला भूषणरूप अहिंसा ही है एवं अहिंसा के समान कोई तीर्थ भी नहीं जैसे टेढी मेढी होकर चलने वाली अनेक नदियाँ अन्तिम में शान्त व सीधे समुद्र में प्रवेश कर जाती हैं ठीक उसी प्रकार हिंसा से रहित सज्जन श्रीवैष्णवों में सभी धर्म आश्रय प्राप्त कर लेते हैं। प्राणी हिंसा में मानव सभी का घात करने वाला होता है वह लकड़ी में स्थित अग्नि के समान दूसरों का नाश करके स्वयं भी नाश हो जाता है अतः मानव को हिंसा सभी प्रकार से छोड़ देना चाहिये। जो अधोगति का कारण है। कन्द, मूल, फल एवं हविष्यान्न अर्थात् चावल गेहूँ, जौ, तिल आदि पवित्र पदार्थों से शरीर सम्बन्धी निर्वाह अच्छी प्रकार से होता है तो हिंसा सम्बन्धी पाप कर्मों में मानवों को लगना नहीं चाहिये। उन हविष्यान्न पदार्थों को भी अपने पाप कर्मों की निवृत्ति की कामना करने वाले श्री वैष्णवों को सर्वेश्वर श्री सीता रामजी को नियम के अनुसार समर्पण करके ही सेवन करना चाहिये। भगवान् को अनिवेदित अर्थात् भोग नहीं लगाये पदार्थ का सेवन पाप को बढ़ाने वाला होता है-

प्रभुप्रसाद पट भूषण धरहीं। तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं ॥

इस प्रकार का मानव का आदर्श होना चाहिये। इस प्रकार के उपदेशामृत श्रीकाठियापरिवाराचार्यजी से नियमित हुआ करते हैं। श्रीखोजीदेवपीठाचार्यजी भगवान् के अर्चावतार में गहरी निष्ठा रखते है उनसे संचालित त्रिवेणीधाम में स्थित अर्चाविग्रह की अति सुन्दर श्रृङ्गार सेवा, पूजा, राग, भोग की व्यवस्था है उसी प्रकार की व्यवस्था डाकोर में स्थित ब्रह्मपीठ की भी है।

'समर्प्य कर्णाणि शुभानि वैष्णवो रामाय भक्ष्यं च निवेद्य भक्षयेत् ॥'

इस जगदाचार्य भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी की आज्ञा का शतप्रतिशत आपसे संचालित दोनों पीठों में होता है एवं नियत रूप से भगवान् की स्तुति हुआ ही करती है यह आदर्श वर्तमान पीठाधीश्वरजी के स्वतः आचरित क्रियाकलापों से ओत-प्रोत है जो श्रीवैष्णव धर्म का मूल है।

आनन्द भाष्यक तरिमानन्दपथदर्शक म् । आनन्दनिलयं वन्दे (श्री) रामानन्दं जगद्गुरुम् ॥ कलौ खलु भविष्यन्ति चत्वारः साम्प्रदायिकाः श्रीब्रह्मरुद्रसनकाः वैष्णवाः क्षिति पावनाः ॥

श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, संहिता एवं तन्त्रादि ग्रन्थों में आत्म कल्याणार्थ "रुचीनां वैचित्र्यात्" के आधार पर वैष्णव जगत् में भगवान श्री सीताराम एवं वैष्णवीय उपासना के अनेकों श्रोत मिलते हैं जिसके सिध्यर्थ तत् तत् इष्ट देवता की मंत्र परम्परा प्राप्त होती है। सनातन परम्परा से चली आ रही उपासना पद्धति को सम्प्रदाय कहते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त पद्मपुराण के वचनों के अनुसार चारों सम्प्रदाय के अनुयायी भगवत्भक्ति का प्रचार कर कलियुग को पवित्र बनाने वाले होंगे ऐसा कहा गया है।

सम्प्रदाय:-

सम्यक् प्रकृष्ट दानं च मंत्रादेः श्रुतिमूलकम् इत्यर्थः सम्प्रदायेति शब्दस्योक्तः महर्षिभिः ।

जो वैदिक मन्त्रों को विधान (सरहस्य) परम्परा से उपदेश करे उसको सम्प्रदाय कहते हैं। जो कि चार हैं। श्री, ब्रह्म, रूद्र एवं सनकादि जिनके कलियुग में प्रवर्धकाचार्य भी चार हैं।

(श्री) रामानन्दो निम्बादित्यो विष्णु स्वामी श्री माधवः । चत्वारो भगवद्भक्ता जगती धर्म स्थापकः एतेषामनुयायिनी द्विपंचाशद् विजज्ञिरे॥

चतुः सम्प्रदाय में श्री सम्प्रदायाचार्य जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य जी हैं, सनकादि सम्प्रदाय के श्री निम्बार्काचार्य, रूद्र सम्प्रदाय के श्री विष्णु स्वामी एवं ब्रह्म सम्प्रदाय के श्री माध्वाचार्य हुए। इन्हीं चतुः सम्प्रदाय के वैष्णवों के संगठनमहाकुम्भ के अवसर पर वैष्णवीय अनी, अखाड़ों के साथ शाही स्नान करते हैं। श्री सम्प्रदाय के अनुयायी श्री रामानुजाचार्य को भी आचार्य माना गया है किन्तु उनकी गणना चतुः सम्प्रदाय के वैष्णवों में कहीं पर नहीं है। अस्तु श्री सम्प्रदाय में भले ही श्री लक्ष्मीनारायण की उपासना के प्रवर्तकाचार्य के रूप में श्री रामानुजाचार्य को श्री सम्प्रदायाचार्यत्वेन स्वीकार किया जाता है किन्तु श्री वैष्णव चतुः सम्प्रदाय संगठन के अन्तर्गत अनादि वैदिक श्री सम्प्रदायाचार्य के रूप में प्रस्थानत्रयी आनन्द भाष्यकार हिन्दू धर्मोद्धारक यति पति चक्र चूड़ामणि जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य को ही स्वीकार किया गया है। जिन इतिहासकारों ने आचार्य श्री को रामानुजानुवर्ती लिखा है वास्तव में उन्होंने किम्वदन्तियों एवं विकृत परम्पराओं को ही प्रामाणिक मानकर ऐसा लिखा है जिनका खण्डन श्री स्वामी भगवदाचार्य, श्री स्वामी रघुवराचार्य प्रभृति महापुरुषों ने प्रबल प्रमाणों के आधार पर किया है। जिनका उदाहरण के रूप में डॉ. रामेश्वर दास श्री वैष्णव ने अपने शोध ग्रन्थ "मध्य कालीन हिन्दी भक्ति साहित्य को जगद्गुरु श्री स्वामी रामानन्द की देन" में विस्तार से सम्पादित एवं प्रतिष्ठित किया है। वास्तविक स्थिति यह है कि श्रीराम मंत्रराज की एवं श्री रामोपासना की सुदृढ़ परम्परा रही है जो अनादि वैदिक काल से अविछिन्न रूप से चली आ रही है। जिसके सहस्त्रों प्रमाण वेद, पुराण, इतिहास, संहिता एवं तन्त्र ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं।

उदाहरणार्थ श्री मैथिली महोपनिषद् में श्री सम्प्रदाय की आनुपूर्वी परम्परा श्री शुकाचार्य पर्यन्त देखने को मिलती है, जो कि निम्न प्रकार से है:- इममेव मनुं पूर्व साकेत पतिर्माभिवोचत् अहं हनुमते मम प्रियायप्रियतराय स वेद वेदिने ब्रह्मण स वशिष्ठाय स पराशराय स व्यासाय स शुकाय इत्येषोपनिषद्। इत्येषा ब्रह्मविद्या। इसी प्रकार मंत्रराज की परम्परा श्री अगस्त संहिता, श्री बाल्मिक संहिता, श्री वशिष्ठ संहिता एवं गीता के आनन्द भाष्यादि ग्रन्थों में आनुपूर्वी उपलब्ध है। इसी प्रकार आचार्य चरणों के चञ्चरीक परवर्ती आचार्यों के द्वारा भी मंत्र परम्परा के आचार्यों का स्मरण किया गया है। इससे सनत्कुमार आदि संहिताओं के वचनों के अनुसार सर्व लोकोपकारी द्विभुज श्री सीताराम की उपासना अनादिकाल से चली आ रही है जिसका प्रचुर मात्रा में वर्णन वेद, पुराण, इतिहास एवं संहितादि ग्रन्थों में है। उपर्युक्त शास्त्रीय प्रमाणों का संग्रह सम्प्रदायनिष्ठ विद्वान् आचार्यगणों के द्वारा किया गया है। अतः जिन महानुभावों को इस विषय में जानने की इच्छा हो उन्हें श्री सीताराम नाम प्रताप प्रकाश, संग्रहीता- श्री युगलानन्य शरणजी महाराज, इसी प्रकार श्री रामचरणदास जी (करुणासिन्धु जी) द्वारा संग्रहीत श्री राम नवरत्न सार संग्रह, महात्मा ब्रह्मदास जी द्वारा प्रणीत श्री रामपरत्वम्, श्री सरयूदास कृत श्री वैष्णव कुल भूषण सारसंग्रह, जगद्गुरु श्री रामेश्वरानन्दाचार्य कृत श्री रामपरत्वम् आदि ग्रन्थों को देखकर एवं गहन अध्ययन कर अपनी जिज्ञासा शान्त करनी चाहिए, उदाहरणार्थ कुछ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत हैं।

सचन्त यदुषसः सर्वेय चित्रामस्य केतवो राम विन्दन्। आयनक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो न किरानुवेद

(ऋ.)

उपर्युक्त वैदिक मंत्र से श्री राम षड्क्षर मंत्र को उद्धृत कर उसकी महिमा का वर्णन किया गया है जिसकी पद्यसः जानकारी हेतु श्री बोधायन वृत्तिकार ज.गु. श्री पुरुषोत्तमाचार्य द्वारा सम्पादित "वेद रहस्य" के ज.गु. श्री राघवानन्दाचार्य कृत मार्तण्ड भाष्य को देखें। उपर्युक्त ग्रन्थ श्री रामभक्ति की वैदिकता का प्रतिपादन करता है।

श्री रामतापनीय उपनिषद् में "रमंते योगिनोनंते सत्यानन्दे चिदात्मानि। इति राम पदे नासौ परब्रह्माभिधीयते"।

मुक्तिकोपनिषद्:- हरि ॐ अयोध्या नगरे रम्ये रत्न मण्डप मध्यगे सीता भरत सौमित्री शत्रुघ्नाद्यैः समन्वितम् वशिष्ठाद्यैः शुकादिभिः अन्ये र्भागवतैश्चापि स्तूयमानमहर्निशम्। उपर्युक्त प्रमाण से राम भक्ति की प्राचीनता स्पष्ट दिखाई देती है।

श्री हनुमन्नाटक:- इदं शरीरं शत संधि जर्जरं पतत्यवश्यं परिणाम दुर्वहम्। किमौषधं पृच्छसि मूढ़ दुर्मते निरामयं राम रसायनं पिव। अरे मूढ सैकड़ों संधियों से जर्जर परिणाम वशात् अवश्य विनाशशील यह शरीर है इसके लिए क्या औषधि पूछता है समस्त रोगों को हरने वाले राम रसायन का पान कर।

वाराह पुराण:- श्री पार्वतीजी को शंकर जी कह रहे हैं:-

दैवाच्छूकरशावकेन निहतो म्लेछो जराजर्जरी, हा रामेण हतोस्मि भूमि पतिती जल्पं तनुं त्यक्तवान्। तीर्णो गोष्पद्वद् भवार्णव महोनाम्नः प्रभावात्पुन, किंचित्रं यदि राम नाम रसिकास्ते यान्ति रामास्पदम्।

पद्म पुराण:- नाम वरानने॥

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं राम ये ये प्रयोगास्तंत्रेषु तैस्तैर्यत्साध्यते फलं। तत्सर्वं सिध्यतिक्षिप्रं रामनाम्नैव कीर्तनात्॥

नृसिंह पुराण:- प्रहलाद जी की उक्ति सर्व विदित

राम नाम जपतां कुतो भयं सर्वताप शमनैक भेषजं पश्यतात मम गात्र सन्निधौ पावकोपि सलिलायते धुना।

ब्रह्मयामल तन्त्र में श्री ब्रह्माजी द्वारा नारद जी को उपदेश:-

राम नाम सदानन्दो राम नाम सदा गतिः।
राम नाम सदा तुष्टी राम नाम स्वरूपकः॥
राम नाम परो वेदो राम नाम सदा शुचिः।
राम नाम परो योगो राम नाम परी ध्वनिः॥
राम नाम परं बीजं राम नाम परं जगत्।
राम नाम परो मंत्री राम नाम परा क्रिया॥
राम नाम परो यज्ञो राम नाम परी जपः।
राम नाम परं सारं रामो लक्ष्मी समावृतः॥

काशी खण्डे:- पेयं पेयं श्रवण पुटकै राम नामाभिरामं, ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्म रूपम्। जल्पन् जल्पन् प्रकृतिविकृतौ प्राणिनां कर्णमूले। वीथ्यां वीथ्यामटति जटिलः कोपि काशी निवासी॥

सनत्कुमार संहिता में व्यास जी ने युधिष्ठर जी को सम्बोधित किया:-

श्री रामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्म संज्ञकम् ब्रह्महत्यादि पापघ्नमिति वेद विदो विदुः।
-भुक्ति मुक्तिञ्चविन्दते

हिरण्यगर्भ संहिता में अगस्तजी ने सुतीक्ष्ण जी को कहा:-

अभिरामेतियन्नाम कीर्तितं विवशैश्च यैः।
तेपि ध्वस्ताखिलाघौघायांति विष्णुं परं पदं॥

महा शंभु संहिता में श्री जानकीजी ने श्री रामजी को सम्बोधित किया-

रामेति नाममात्रस्य प्रभावमति दुर्गमम् मृगर्यान्त तु यद्वेद्वाः कुतो मन्त्रस्य ते प्रभो।

श्री मन्महारामायणे शिव वाक्यं पार्वतीं प्रतिः-

अंशाशै राम नाम्नश्च बयः सिद्धा भवंतिहि।
वीजमोंकार, सोहं च सूत्रमुक्तमितिश्रुतिः॥

परमेश्वर नामानि संत्यनेकानि पार्वति।
परन्तु राम नामेदं सर्वेषामुत्तमोत्तमम्॥

रामस्यैव रमुक्रीड़ा नाम्नी नान्यस्य जायते।
जीवीत एव रामस्य स्मरणेन गतिं वृजेत॥

॥ वृहत् मनुस्मृतिः -

सप्त कोटि महामंत्राश्चित्त विभ्रम कारकाः। एक एव परी मंत्री राम इत्यक्षरद्वयम्॥

श्रुति सिद्धान्त भी यही है कि:-

यश्चाण्डालोऽपि रामेति वाचं तेन सह संवसेत् तेन सह संवदेत् तेन सह सभुज्जीयात्। वदेत्

श्रीरामचरित मानस, श्री मद्भागवत् अध्यात्म रामायण आदि की तो बात ही क्या वहाँ तो स्थान- स्थान पर राम नाम की महिमा गाई गई है। श्रीरामजी के अवतारी होने में भी बहुत प्रमाण प्राप्त होते हैं जिनमें यजुर्वेदीय सुदर्शन संहिता के वचनों को उद्धृत किया जाता है:-

मत्स्यश्च रामहृदयं तथा गुरु जनार्दनः कूर्मश्चाधार शक्तिश्च वाराहो भुजयोर्बलं। नरसिंहो महाकोपो वामन कटि मेखला। भार्गवो जंघयो जातो बलरामश्च पृष्ठतः। बौद्धश्च करुणा साक्षात् कल्की चित्तस्य हर्षतः। कृष्ण श्रृंगार रूपश्च वृन्दावन विभूषण। एतांश्चाशं कला चैव रामस्तु भगवान स्वयम्॥

सामवेद की उपब्राह्मण स्वरूप भरद्वाज संहिता में वर्णन है कि अवतारा बहवः सन्ति कलाश्चांश विभूतयः। राम एव परं ब्रह्म सच्चिदानन्द मव्ययम्। सर्वेषामवताराणामवतारी रघूत्तमः। सरिता सर्व मध्येषु सरयू पावनी यथा॥

इस प्रकार रामोपासकों के लिए अनेकानेक प्रमाण श्री हनुमत् संहिता, सनक सनातन संहिता, अगस्त संहिता सदाशिव संहिता, महासुन्दरी तन्त्र, महाशंभु संहिता, सनत्कुमार संहिता एवं ब्रह्मसंहिता में श्री रामोपासना की महिमा श्री रामोपासक अवतारों एवं ऋषि महर्षियों के द्वारा अनादिकाल से गाई एवं आचरण में ली जा रही है जो सभी प्रकार से मंगलकारी है। उसी को जब-जब होयधर्म की हानी, बाढ़हिं असुरअधम अभिमानी। तब- तब प्रभु धरि मनुज शरीरा। हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा। की उक्ति को चरितार्थ करते हुए शबरी, गिद्ध, निषाद, वानर आदि सामाजिक दृष्टि से हेय लोगों को गले से लगाने वाले अवतारी रघूत्तम भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने सामाजिक आंतरिक बुराइयों एवं यवनों के दुष्कृत्यों से त्राहि-त्राहि कर रही हिन्दू जनता को पुनः पूर्ववत् गले से लगाने के लिए संहिता वचन "रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले" के अनुसार हमारे परमाराध्य भगवान् श्री राम ही इस धराधाम पर सम्वत् 1356 में त्रिवेणी संगम पर बसे प्रयाग राज में श्री पुण्यसदन एवं माता श्री सुशीलाजी के घर माघ कृष्ण सप्तमी को अवतरित हो श्री काशी पञ्चगंगा घाट निवासी दुर्वादध्वान्त मार्त्तण्ड श्री सम्प्रदायाचार्य श्री वशिष्ठावतार श्री राघवानन्दाचार्य से विरक्त दीक्षा ग्रहण कर परम्परा से प्राप्त श्री रामषडक्षर मन्त्रराज की दीक्षा द्वारा श्री अनन्तानन्द प्रभृति को जहाँ गले लगाया वहीं कबीर, रविदास, सेन, धन्ना आदि को गले लगा कर एवं अपनी शंख ध्वनि से दुर्जन यवनों को रास्ते पर लाकर डगमगाती हुई हिन्दू धर्म की नौका का उद्धार किया। इसीलिए आपको हिन्दू धर्मोद्धार जगद्गुरु श्री स्वामी रामानन्दाचार्य के रूप में इतिहास साथ जनता आज भी स्मरण कर रही है। जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र प्रभु का उदार चरित्र विस्तृत रूप में पाया जाता है उसी प्रकार श्रीरामावतार जगद्गुरु का चरित्र भी बहुत उदार एवं विस्तृत है। आपका चरित्र सर्वलोकोपकारी होने के कारण बहुत से कविजन एवं लेखकों की लेखनी का विषय बना। जैसे, संस्कृत में श्री रामानन्द दिग्विज-महाकाव्य ज.गु. श्री स्वामी भगवदाचार्य प्रसादित इसी प्रकार गोस्वामी श्री हरिकृष्ण शास्त्री द्वारा रचित भारतीय संस्कृत वाड़मय में "श्री आचार्य विजय नामकमहाकाव्य, हिन्दी में स्वामी श्री जयरामदेव कृत रामानन्दाचार्य चरितम्, अब से लगभग 600 वर्ष पूर्व आचार्य श्री के शिष्य चेतनदास जी द्वारा पैशाची भाषा में लिखा गया "प्रसंग परिजात" श्री मनमोहनाचार्य द्वारा आचार्य जीवन वृत्त, श्री स्वामी अभिरामदास जी की शिष्या द्वारा खोज पूर्ण विवेचन "काशीमार्तण्ड", "सद्गुरु सुवश मालिका' ले. सन्तशिशोमणिदास इत्यादि ग्रन्थ स्वामी जी के जीवन पर प्रकाश डालते हैं।

वैष्णव धर्म की यह परम्परा विभिन्न शाखाओं में परिणीत होकर चल रही है। मूलत: समस्त सनातन धर्मावलम्बी वैष्णव धर्म की परम्परा के पोषक है।

स्त्री-विमर्श: वैदिक ऋषिकाओं के सन्दर्भ

प्रो. सरोज कौशल
प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, अधिष्ठाता, कला संकाय,
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर

ऋग्वेद में ऋषिकाओं तथा तद्रचित सूक्तों पर विमर्श की महती अपेक्षा है। ऋग्वेद-संहिता में 'अदिति' सर्वाधिक प्रसिद्ध है। मन्त्रद्रष्टा नारियों में अदिति ही एक ऐसी ऋषिका है जिसका लगभग 80 बार नाम्ना कथन किया गया है। ऋग्वेद चतुर्थ मण्डल के अठारहवें सूक्त की पाँचवीं, छठी एवं सातवीं ऋचायें अदिति द्वारा साक्षात्कृत हैं। अदिति एक मन्त्रद्रष्टा ऋषिका है जिसने अपनी तपश्चर्या से ऋग्वेद के दशम मण्डल के 72वें सूक्त के सम्पूर्ण नौ मन्त्रों का साक्षात्कार किया। इस सूक्त के चतुर्थ, पञ्चम, अष्टम तथा नवम मन्त्रों में 'अदिति' पद का भी उल्लेख है।

अदिति शब्द का वास्तविक अर्थ है - सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, बन्धनों से सर्वथा मुक्त। ऋग्वेद के दशम मण्डल में अदिति को 'सर्वतातिम्'[1] अर्थात् 'सर्वग्राहिणी' कहा गया है। अदिति के लिए 'विश्वजन्या' अर्थात् 'विश्वहितैषिणी' पद का प्रयोग किया गयाथ है। अदिति को 'उरुव्यचा' अर्थात् अतिविस्तीर्णा माना गया है। अदिति यहाँ स्त्रीजाति का उपलक्षणरूपा है। स्त्रियों का स्वरूप विश्वहितेच्छु होना चाहिए अथवा विश्वहितैषिणी तो स्त्री ही हो सकती है क्योंकि दया, ममता करुणा आदि गुण उसे जन्मतः ही प्राप्त हुए हैं। अदिति की महनीयता के कारण ही उसे अखण्डनीया अदीना आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है। अदिति के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि आकाश, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र, सम्पूर्ण देवता, सभी जातियाँ अर्थात् जो कुछ भी उत्पन्न हुआ है और जो भी भविष्य में उत्पन्न होगा, वह सभी अदिति का ही रूप है। इस मन्त्र में 'द्यौः' ब्रह्म का सूचक है और इसके अतिरिक्त अन्तरिक्ष को प्रथम, माता को द्वितीय, पिता को तृतीय, पुत्र को चतुर्थ,

सम्पूर्ण देवताओं को पञ्चम, उत्पन्न हुए प्राणिवर्ग को षष्ठ तथा जनिष्यमाण जीवांश को सप्तम सप्तक मानकर सर्वत्र 'अदिति' के प्रभुत्व की स्थापना की गई है।

वैदिक ऋषि ने रूपक की कल्पना कर अदिति की श्रेष्ठकर्म - प्रतिपादिका रूप भूमिका का मनोरम वर्णन किया है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में अदिति को एक सुन्दर नौका के रूप में कल्पित कर ऋषि कहते हैं - मङ्गलमयी, सुखदायिनी, सुप्रणीत यह अदितिरूपी नौका दुःखों से बचाती है। यह नौका निरापद है क्योंकि इसमें कभी भी छिद्र होने की आशंका नहीं है। छिद्राभाव में इस नौका में कभी बाहरी जल नहीं भर सकता है; जिसके कारण उसके डूबने का भय हो। ऋषि ने कल्याण चाहने वालों को इस नौका में आरूढ़ होने का आह्वान किया -

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसो अस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये।।[2]

'हम सब आकाशरूपवाली मङ्गलमयी नौका पर सवार हाकर देवत्व को प्राप्त करें।' इस नाव पर बैठने से किसी प्रकार की अरक्षा की शंका नहीं हो सकती । इस नौका की यात्रा बहुत आनन्दवर्धक है। कभी न नष्ट होने वाली यह नौका बहुत विशाल और सुदृढ है। निर्दोष यह नौका अपनी निष्कलंकता के कारण आरूढ़ होने वालों को निर्बाध गति से उस परम लक्ष्य तक पहुँचाने में सक्षम है।

यद्यपि अदिति के अनेक रूपाकारों का ऋग्वेद निरूपण करता है तथापि उसका नारीत्व सर्वत्र अपनी कवितामयी कमनीयता से विश्व का मंगल करता हुआ प्रतीत होता है। अदिति के लिए प्रयुक्त विशेषण बन्धनमुक्त ; स्वाधीन वैदिककालीन नारी की स्वतन्त्रता के सूचक हैं। अदिति की व्यापकता गुणान्वितता संहिता-युग के नारी-समाज के प्रभुत्व की प्रतिपादिका है।

अपाला – अपनी तपश्चर्या से अपाला से सुपाला बनने वाली कन्यारत्न अपाला ब्रह्मवादिनी के रूप में सुप्रथित है। इन्होंने अपनी तपश्चर्या के प्रभाव से ऋग्वेद के आठवें मण्डल के 91 वें सूक्त की ऋचाओं का साक्षात्कार किया। सायणाचार्य ने अपाला के जीवन-वृत्त का विशद निरूपण करते हुए बताया कि महर्षि अत्रि के घर अपाला का आविर्भाव हुआ । जब वह कुछ बड़ी हुई तो उसके शरीर पर ऋषि को कुष्ठ के चिह्न दृष्टिगोचर

हुए, उनको किसी भी प्रकार ठीक नहीं किया जा सका तो उन्होंने अपाला को आन्तरिक बोध से अलौकिक बनाने का निर्णय किया।

महर्षि अत्रि की विलक्षण शिक्षणपद्धति से अल्पकाल में ही अपाला एक अद्वितीया विदुषी बन गयी। तदनन्तर ऋषि कृशाश्व से उसका विवाह सम्पन्न हुआ - परन्तु ऋषि उसके प्रति उदासीन ही रहे - इस उदासीनता के फलस्वरूप अपाला ने तपस्या को ही जीवन का ध्येय बना लिया। क्योंकि तपस्यारूपी अनल में तपकर मानव का व्यक्तित्व उदात्त हो जाता है।

अपाला ने अपनी साधना से यह सिद्ध कर दिया कि वैदिक संहिताकाल की नारियाँ पुरुष के पौरुष को भी चुनौती देने में समर्थ थीं। वे अपमानित होकर भी अवसाद-मग्न नहीं हुईं। जीवन को उन्होंने व्यर्थ नहीं किया अपितु अनवरत उदात्तता के नूतन प्रतिमान रचे।

कन्या वारवायती सोममपि सुताविदत्।

अस्तं भरन्त्यब्रवीदिन्द्राय सुनवै त्वा शक्राय सुनवै त्वा।[3]

घोषा – वैदिक संहिता-युग में वेद-प्रचारिका ब्रह्मचारिणी कन्या ही 'घोषा' इस नाम की अधिकारिणी थी। घोषा को ज्ञान-धारा पैतृक - परम्परा से प्राप्त हुई थी। ऋग्वेद के दशम मण्डल के सूक्त 39 तथा 40 की सभी ऋचाओं के साक्षात्कार का श्रेय 'घोषा' को जाता है। इन दोनों सूक्तों में 28 मन्त्र हैं, जिनमें कन्याओं के लिए वेदाध्ययन से लेकर गृहस्थाश्रम - प्रवेश पर्यन्त - समस्त कार्यों को सुचारु करने का विधान है।

इन सूक्तों में घोषा ने अश्विनीकुमारों से विविध प्रकार की प्रार्थनायें की हैं- 'हे देव ! आप दोनों हमें मधुर बोलने की प्रेरणा दें और हमारी मनोकामनायें पूर्ण करें। हम आपकी उपासिकायें हैं और मुख्य रूप से तीन पदार्थों की कामना करती हैं- '

1. सत्य और मधुर वचन की।
2. कर्म की पूर्णता की।
3. विविध प्रकार की बुद्धि की।

घोषा के द्वारा दृष्ट / साक्षात्कृत सूक्तों में भाव तथा भाषा का सुन्दर समन्वय दृष्टिगोचर होता है। घोषा कहती हैं - हे सत्यस्वरूप ! हमें ऐसे उपाय बताइये जिससे हमारे विरोधी भी हमारे प्रति श्रद्धावान् हो जायें।

हे देवद्वय ! आप हमारी प्रार्थना को सुनें और हमें उसी प्रकार शिक्षा दें, जिस प्रकार माता-पिता अपनी सन्तान को शिक्षा देते हैं।[4] इसी सूक्त में कहा गया है - हे अश्विनीकुमारों ! जिस प्रकार कुशल कारीगर / शिल्पी रथ बनाता है, उसी प्रकार हम आपके लिए सुन्दर संस्कारयुक्त स्तुति की रचना करती हैं। वस्त्राभूषणों से अलंकृत कन्या जिस प्रकार वर के पास प्रेषित की जाती है। वैसे ही हम अलंकारादि से विभूषित कमनीय कविता को आपके समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

घोषा की मन्त्रों के द्वारा जो घोषणायें हैं वे दार्शनिकता की ओर भी अभिप्रेरित करती हैं-

मैं राजकन्या घोषा सर्वत्र वेद की घोषणा करने वाली, वेद का सन्देश सर्वत्र पहुँचाने वाली स्तुति पाठिका हूँ। आप सदा मेरे पास रह कर मेरे इन इन्द्रिय रूपी अश्वों से युक्त शरीररूपी रथ के साथ मेरे मनरूपी अश्व का दमन करें।

यहाँ घोषा मनरूपी अश्व के दमन से व्यक्तित्व के उदात्तीकरण को रेखांकित करती हैं। यह उदात्तता केवल उस कोटि के प्राणियों में सम्भव है जो आध्यात्मिक दृष्टि से विशिष्ट सर्जनात्मक होते हैं। जिस आत्मानुशासन की अपेक्षा यहाँ स्त्री को स्वयं से है, वह परिष्कृत मनीषा वाली समधीत स्त्रियों की एक पूरी परम्परा की ओर हमारा ध्यानाकर्षण करती है जो ब्रह्मवादिनी कहलाती थीं और इस निश्चिन्तिता से शास्त्रार्थ करती हुई दिग्भ्रमण करती थीं जैसे आज की विदुषियाँ।

वे कहती हैं - हे नायकरूप अश्विनीकुमारों ! जिस प्रकार शिकारी बड़े-बड़े सिंहों की मृगया में खोज करते हैं, वैसे ही हम ब्रह्मचारिणी कन्यायें भी रात-दिन प्रेम-पूरित हविष्य द्वारा आपका आह्वान करती हैं।

किन्तु ये ब्रह्मचारिणी कन्यायें जीवन के भौतिक सुखों के सन्धान से एकदम विरत रखी गयी हों - ऐसा भी नहीं है। घोषा अश्विनीकुमारों से प्रार्थना करती हुई कहती हैं-

जीवं रूदतिवि मन्यन्ते अध्वरे दीर्घामनुप्रसीति दीधियुनरः।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिमेमयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे।।[5]

जब भी कोई ब्रह्मवादिनी ब्रह्मचारिणी नारी लक्षणों से सम्पन्न होकर कमनीय वर की इच्छा करे, उसे उसकी मनोदशा के अनुकूल वर मिले। पति के घर वधू को जीवन के सभी साधन सुलभ रहें और सदा उस घर में दया, परोपकार, उदारता, और शालीनता आदि गुण नदी के प्रवाह के समान गतिशील बने रहें। यहाँ रोचकता इस बात में है कि अनुकूल संसाधन तथा वातावरण उपलब्ध कराने की अपेक्षा केवल वर से ही नहीं अपितु पूरे घर से की गई है। घर के एक-एक व्यक्ति से यह आशा की गई है कि वह स्त्री को विकास का अनुकूल परिवेश दे।

यही घर विकसित होकर समाज बनता है जिसके बारे में स्त्री आश्वस्त होना चाहती है कि इससे उसका हितसम्वर्धन अवश्यम्भावी है।

घोषा-दृष्ट सूक्तों मे सुन्दर शैली से सत्य वाणी, श्रेष्ठ कर्म एवं प्रखर बुद्धि का प्रतिपादन किया गया है। सोम का उपमान प्रस्तुत कर पति प्रेम की कल्पना निःसंदेह घोषा के पाण्डित्य की सूचक है। जिस प्रकार सोमपान करने के पश्चात् मनुष्य की इच्छा अन्यत्र नहीं होती, ठीक उसी प्रकार विवाहोत्सव सम्पन्न होने के बाद पुरुष की भी अपनी सहधर्मिणी के अतिरिक्त अन्य स्त्री में रुचि न हो।

जुहू – सूक्तगत मन्त्रों का मनन - दर्शन करने वाली नारियों में अग्रगण्यनाम है 'जुहू'। ऋग्वेद के दशम मण्डल के 109 वें सूक्त के सभी 7 मन्त्रों की ऋषिका 'जुहू' ही हैं। सम्भवतः नर-नारियों में वैदिक प्रचार करने के कारण ही 'जुहू' इस उपाधि से इन्हें अलंकृत किया गया होगा।

जुहू द्वारा दृष्ट ऋग्वेदीय 10/109वें सूक्त का सारगर्भित संदेश हमें रोमांचित कर देता है - यह मनुष्य जाति महान् कौतुकशालिनी है और ईश्वर की महिमा प्रकट करने वाली है। ईश्वर की सत्ता को मानने वाली यह मानव जाति जब कभी भौतिकवाद की चकाचौंध में पथभ्रष्ट हो जाती है तो उस समय विद्वानों को एक स्थान पर एकत्रित होकर सत्य का अन्वेषण करना चाहिए।

जुहू ने कर्मत्याग करने वाले व्यक्ति से प्रायश्चित कराने हेतु क्या करना चाहिए -इसका विशद निरूपण किया है। निर्णायक मण्डल में नर और नारी दोनों की आवश्यकता पर बल दिया है। दूरदृष्टि, दृढ़ निश्चय, विस्तृत और व्यापक दृष्टि, धर्मपरायणता आदि से ही सम्यक् निर्णय सम्भव है। पक्षपाती कूपमण्डूक, चाटुकार, अन्याय के समक्ष सिर झुकाने वाले व्यक्ति कभी सही निर्णय नहीं ले सकते। तप के प्रभाव से कभी-कभी निम्नस्तर का

व्यक्ति भी उच्च स्थान तक पहुँच जाता है। इस मन्त्र में जुहू का अपने पति (बृहस्पति) के प्रति कितना तीक्ष्ण व्यङ्ग्य है, जो नारी की निर्भीकता को रेखांकित करता है। ये सूक्त अपने आविर्भाव से लेकर अद्यावधिपर्यन्त उतने ही प्रेरणादयक एवं सहायक हैं जितना कि वैदिक काल में थे।

रोमशा – 1/126वें सूक्त की साक्षात्कर्त्री हैं। वेद-वेदांग के प्रचार करने हेतु अनेक प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता होती है। वेद और वेदांग इस नारी के रोमवत् थे अर्थात् इसके कण्ठ थे। सम्भवतः इसीलिए इसका नाम ही रोमशा पड़ गया।

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्याऽत।
राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ययुः।
पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम्।

रोमशा शब्द पहले विशेषणरूप में ही आया होगा, जिसका प्रयोग बाद मे इस मन्त्रद्रष्ट्री नारी के लिए रूढ़ हो गया। इस सूक्त में रोमशा रूपी बुद्धि का बड़ा ही सुन्दर विवेचन किया गया है। सिन्धु नदी के तटवर्ती भू-भाग के स्वामी भावयव्य ने बुद्धिसाधिका रोमशा की प्राप्ति हेतु सहस्र यज्ञों का अनुष्ठान किया था। यश की कामना करने वाले राजा से प्रभावित होकर अन्त में रोमशा ने उसे स्वीकार कर लिया। स्वामी ने भी अपनी सहधर्मिणी की प्रशंसा करते हुए कहा है - 'मेरी पत्नी गृहस्वामिनी के रूप में मुझे सैंकड़ों प्रकार के भोग्य - पदार्थ और ऐश्वर्य देती हैं। यह मेरी अत्यन्त प्रिय सहधर्मिणी है।'

लोपामुद्रा – 1/179 - सूक्त का साक्षात्कार। वैदिक - संहिताओं की मन्त्रद्रष्टा नारियों में लोपामुद्रा का स्थान निःसन्देह वैशिष्ट्य रखता है। विदर्भराज के ऐश्वर्य में लालित - पालित - पोषित पुत्री अपने माता-पिता को चिन्तामुक्त करने हेतु वनवासी अगस्त्य से विवाह करने में लेशमात्र भी संकोच नहीं करती।

हजार पुत्रों की अपेक्षा एक ही राष्ट्रभक्त, समाजसेवी, चरित्रवान्, विद्वान् पुत्र श्रेष्ठ है जो माता-पिता के दोनों कुलों का मस्तिष्क ऊँचा कर देता है। ईश्वराराधना और गृहस्थाश्रम की परम्परा का निर्वाह एक साथ कैसे हो सकता है, कामवासनाओं और मानसिक दुर्बलताओं को कैसे नियन्त्रित किया जा सकता है, इत्यादि सद्गुणों अथवा जीवन के सूत्रों का यदि कहीं एकत्र दर्शन होता है तो वह स्थान है - लोपामुद्रा का आश्रम।

वागाम्भृणी – अम्भृण ऋषि की पुत्री होने के कारण वागाम्भृणी 10/125 सूक्त की द्रष्टा है। यह सूक्त स्त्री - स्वाभिमान की पवित्र संहिता है। यह संहिता अद्वैतवाद की मूल जननी है, जिसने शङ्कराचार्य को एक ऐसा, वैचारिक मन्त्र सौंपा, जिससे वे सनातनधर्म की पुनः आधारशिला स्थापित कर पाये। ऐसा प्रतीत होता है कि अम्भृण ऋषि की इस पुत्री ने अपने समय में अपनी वाणी के बल से सभी को पराभूत कर दिया । वाग्देवी के रूप में सुप्रथित इस ऋषिका ने स्वयं को राष्ट्री अर्थात् राज्यों की अधिष्ठात्री बताया -

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।।[6]

यह ऐसी शक्तिशालिनी है कि इनकी कृपा से ही मानव बलवान्, मेधावी, स्तोता अथवा कवि हो सकता है। सम्पूर्ण विश्व का सन्मार्ग प्रवर्तिका वाक्देवता वस्तुतः महामहिमाशालिनी हैं। उनकी एक-एक उक्ति हमें वैचारिक और सर्जनात्मक उदात्तता प्रदान करती है-

मैं जब सर्जना करती हूँ तो मेरी गति वायु के समान होती है। मैं अपने महत्त्वपूर्ण कार्यों से महिमामयी होकर आकाश, पृथिवी की सीमाओं को भी लाँघ चुकी हूँ।

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एनां पृथिव्यैतावती महिना संबभूव।।[7]

सर्जना करते हुए वायु के समान गति होना - इसका अर्थ है कि सर्जना में पूरे ध्यान को एकाग्र कर उसका चहुँदिश प्रसार करना। वायु की गति सर्वाधिक तीव्र मानी जाती है। इसलिए वायु से उपमा प्रदान की गई। प्रत्येक सर्जना में पराकाष्ठा को प्राप्त करना तदनन्तर उस पराकाष्ठा का भी अतिक्रमण कर देना - यह एक ऐसी अवधारणा है जो कि अभिप्रेरणीय है।

इस प्रकार की सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी इयत्ता स्थापित करने के लिए स्त्रियाँ कभी कभी तटस्थता का आचरण करने के लिए बाधित हो जाती थीं, बृहत्तर उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें मोह-माया-ममता आदि स्त्रीसम्मत भावनाओं का परिलंघन भी साधक-भाव से करना पड़ता था। इसका भास्वर उदाहरण है - सरमा जो

ऋग्वेद के 10/108वें सूक्त की ऋषिका हैं। पणियों ने आर्यों का गोधन चुराकर किसी अज्ञात स्थान पर रख दिया। इन्द्र की संदेशवाहिका बनकर सरमा, पणियों के पास पहुँचती है तो वे उसे अनेक प्रकार के प्रलोभन देते हैं।

गोधन का एक अंश देने का लालच, परन्तु वह तो अडिग ही रहती है। अन्त में उसे अपनी बहिन बनाने का प्रस्ताव भी रखते हैं इसको भी सरमा अस्वीकार कर देती है-

नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदरङ्गिरसश्च घोराः।

इसी प्रकार की हृदय विदीर्ण करने वाली बात उर्वशी पुरुरवा से कहती है कि स्त्री का हृदय तो भेड़िये के समान होता है, वह कोई सम्बन्ध नहीं जानती । यद्यपि इसके अनेक भ्रान्त और मिथ्या अर्थ प्रचारित किये जाते हैं परन्तु इस कटूक्ति का मन्तव्य उच्च कोटि का है-विरह-विदग्ध पुरुरवा के मन में वैराग्य उत्पन्न करना। इस प्रकार वैयाक्तिक सम्बन्धों के ऊपर सामाजिक उद्देश्यों को प्रतिष्ठित करने वाली स्त्रियों की भी एक पूरी महनीय परम्परा है।

विश्ववारा – जो नारी स्वयं पापमुक्त होकर स्त्रियों में वैदिक धर्म का प्रचार करती हुई दूसरों को पाप से मुक्त करती है - उसे 'विश्ववारा' संज्ञा से अभिहित किया जाता है। विश्ववारा ने स्वयं यज्ञ किये, दूसरों को भी वैसा करने का उपेदश दिया। इनके मन्त्रों में दाम्पत्य सुख की विशेष प्रार्थना है।

शश्वती – 8/1 शश्वती बुद्धि का पर्याय है - जो जीवात्मा के साथ शाश्वतरूप में स्थित रहे। उस बुद्धि को शश्वती कहा जाता है। शश्वती ने नारी को बुद्धि का प्रतीक और पुरुष को आत्मा। बुद्धि से ही आत्मा सुशोभित होती है। पति पत्नी सम्बन्ध की महत्ता इनके सूक्त की वैशिष्ट्य है। इसके अतिरिक्त गोधा, यमी, इन्द्राणी, शची, श्रद्धा, उर्वशी आदि अनेक ऋषिकायें बौद्धिक परम्परा को अग्रेसारित करती रही हैं।

श्रद्धा – 10/151वें सूक्त की ऋषिका हैं। श्रद्धा का त्याग कर जीवन की सभी धारायें दुःखदायिनी होती हैं।

देवता तथा मनुष्य श्रद्धा की आराधना करते हैं। उपासकों के निश्चय का कारण श्रद्धा ही है। श्रद्धा का आनुकूल्य ही वैभव-प्राप्ति का साधन है। प्रातः मध्याह्नकाल एवं सायंकाल श्रद्धा ही हमारे द्वारा आहूत होती है।[8]

उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्रियों में कई आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर आध्यात्मिक उन्नति में लगी रहती हैं, इन्हें ब्रह्मवादिनी कहा जाता है। ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ वेदाध्ययन करतीं, काव्य रचना करतीं, त्याग तथा तपस्या के द्वारा ऋषिभाव को प्राप्त करके मन्त्रों का साक्षात्कार भी कर लेती थीं। घोषा, रोमशा, विश्ववारा, अपाला, लोपामुद्रा, सूर्या आदि के मंत्रों में तेजस्विता और चिन्तन का अपूर्व समन्वय है।

सूर्या का विवाह सूक्त ऋ. 10/85 और अथर्ववेद काण्ड (14) दोनों में प्रकट होता है।

हे सूर्ये ! तुम जाकर अपने पति के घर की स्त्री बनो।

'यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि'

यहाँ वशिनी शब्द स्त्रियों के प्रति गौरव का सूचक प्रतीत होता है। साम्राज्ञी शब्द का प्रयोग स्त्री को अधिकार सम्पन्न बनाता है।

पति के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का निष्ठापूर्वक निर्वहन करते हुए अमरता के मार्ग पर दृढ रहें।

साम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु साम्राज्ञ्युत देवतृषु।
ननान्दुः साम्राज्ञयेधि साम्राज्ञ्युत श्वश्रवा.।।

पुरुष तत्त्व मैं प्रकृति हो तुम, सामवेद मैं पुण्य ऋचा तुम

मैं आकाश धरित्री तुम मेरी, आओ - बन्धे विवाहसूत्र में हम तुम।[9]

माता पिता अपनी कन्या को पति के घर जाते समय बुद्धिमत्ता और विद्याबल उपहार में दें । माता-पिता को चाहिए कि वे अपनी कन्या को दहेज दें तो वह ज्ञान का दहेज हो।

वेदों मे स्त्री यज्ञीय है - अर्थात् यज्ञ समान पूजनीय वेदों में नारी को ज्ञान देने वाली सुख-समृद्धि लाने वाली, विशेष तेजसम्पन्ना, देवी, विदुषी, सरस्वती, इन्द्राणी, उषा-सबको प्रबुद्ध करने वाली, इत्यादि अनेक आदर सूचक नाम दिए गये हैं।

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका।

सुधा त्वं अक्षरे नित्येत्रिधा मात्रात्मिका स्थिता।।

वैदिककालीन स्त्रियों की श्रेष्ठ और उच्च भूमिका हमें गौरवान्वित करती है। स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा की सुन्दर व्यवस्था थी। अध्ययन-अध्यापन, घर पविार, तथा सभाओं में और संघर्षमय युद्धों आदि में स्त्रियों का समान योगदान रहता था। प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियों के उन्नति और प्रगति करने की स्वतंत्रता थी, इसीलिए उस काल में नारी की प्रतिभा तथा ज्ञान अपूर्व था। उस काल की स्त्रियाँ गणित, वैद्यक, संगीत, नृत्य और शिल्प का अध्ययन करती थीं। क्षत्रिय स्त्रियाँ धनुर्वेद, अर्थात् युद्धविद्या की भी शिक्षा ग्रहण करती थीं तथा युद्ध में भी भाग लेती थीं।

वेदों में स्त्री के लिए नारी,योषा,जाया,ग्ना (देवपत्नी),स्त्री,सुन्दरी (सूनरी),वधू , पुरन्धि्र, दम्पती, पत्नी, सपत्नी,माता,सती,स्नेहा, दुहिता, कन्या,गौरी,अमाजुर, भगिनी,स्वसा, श्वश्रू,ननान्दृ, भ्रातृजाया आदि अनेक संज्ञायें यह संकेत करती हैं कि स्त्री की समाज में विविध प्रकार की भूमिकाएं रही हैं ।ऋषिका रूप अत्यधिक उदात्त रूप था।

पाद टिप्पण

1. देवेर्भिनः सविता प्रावतु श्रुतमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे।। ऋग्वेद - 10/100/1
2. ऋग्वेद - 10/63/10
3. ऋग्वेद - 8/91/1
4. इयं वामह्वे श्रृणुत मे मह्यं अश्विना पुत्रायेव पितरा महा शिक्षतम्.... ऋग्वेद - 10/39/6
5. ऋग्वेद 10/40/10
6. ऋग्वेद - 10/125/3
7. ऋग्वेद 10/125/
8. ऋग्वेद - 10/15/4-5
9. ऋग्वेद 2/71

संस्कृत भाषा एवं उसके विविध रूप

डॉ. सुभद्रा जोशी
विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ, जयपुर

'' ध्वन्यात्मक शब्दों के द्वारा विचारों का प्रकटीकरण ही भाषा है।''

''भाषा सार्थक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा इसके प्रयोक्ता या श्रोता आपस में विचारों का आदान प्रदान करते है।

समस्त संसार में पाये जाने वाले सभी जड़ और चेतन प्राणियों के भाव अभिव्यक्ति के सभी साधनों- को सामान्य रूप से भाषा कह दिया जाता है, किन्तु भाषा विज्ञान में जिस भाषा को ग्रहण किया जाता है जैसे संस्कृत भाषा वह सांकेतिक आदि मानवीय व्यक्त वाणी है।

'' बृहदारण्यक उपनिषद में भी यह कहा गया है।

'' वाग्वै सम्राट् परमं ब्रह्म'' अर्थात :- वाणी ही संसार का सम्राट् है परंब्रह्म है। भाषा शब्द संस्कृत की ''भाषा'' धातु से निष्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ '' भाष व्यक्तायां वाचि''

'' भाष्यते व्यक्तवाग्रूपेण अभिव्यज्यते इति '' भाषा'' अर्थात व्यक्त वाणी के रूप में जिसकी अभिव्यक्ति की जाती है, उसे भाषा कहते है।

'' भाषा'' धातु से भाषा की निष्पत्ति हुई।

भाष का अर्थ :- ''प्रकाश करना''

विचारो का प्रकाशन करना भाषा से ही सांसारिक - व्यवहार सम्भव हैं'' आचार्य दण्डी के मतानुसार काव्यादर्श में - कहा गया है ''वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते''

अर्थात् :- वाणी के माध्यम से ही लोक व्यवहार की सिद्धि होती है। भाषा मनुष्यों के विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। इसके प्रमुख रूप से दो अंग होते है।

(1) मौखिक (2) लिखित

(1) मौखिक भाषा में विचारों की अभिव्यक्ति मौखिक होती

(2) लिखित भाषा में ध्वनि संकेतों को प्रतीक रूप में लिखकर व्यक्त किया जाता है।

(1) डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार :- ''भाषा मानव उच्चारण अववणों से उच्चारित याद्धच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह संरचनात्मक व्यवस्था है, जिसके द्वारा समाज विशेष के लोग आपस में विचार विनिमय करते हैं। लेखक, कवि या वक्ता के रूप में अपने अनुभवों एवं भावों आदि को व्यक्त करते है तथा अपने वैयक्तिक और सामाजिक व्यक्तित्व, विशिष्टता तथा अस्मिता के सम्बन्ध में जाने अनजाने जानकारी देते हैं।''

भाषा की विशेषताएं :-

(1) भाषा एक व्यवस्था है। यह अनुकरण द्वारा सीखी जाती है।

(2) यह अर्जित सम्पति है ।

(3) यह परिवर्तनशील है ।

(4) भाषा सभ्यता के साथ विकास लाती है।

(5) भाषा प्रतीकात्मक है।

(6) भाषा समाज में विचार विनिमय का साधन है।

(7) भाषा व्यावहारिक दक्षता है।

(8) इसका प्रारम्भ मौखिक है, इसका लिखित रूप सभ्यता और संस्कृति की देन है।

(9) किन्ही भी दो भाषाओं की संरचना पूर्णतः समान नहीं होती।

(10) भाषा स्थूल से सूक्ष्म की ओर विकसित होती है।

(11) भाषा संश्लेषण से विश्लेषण की और बढ़ती है।

(12) प्रत्येक भाषा का अपना एक मानक रूप होता है।

(13) भाषा के अनेक रूप होते है जैसे :- व्यक्ति बोली समाज भाषा, मानक भाषा, साहित्यिक भाषा, मौखिक भाषा, लिखित भाषा।

भाषा के विविध रूप :-

(1) मूल भाषा :- (2) मातृ भाषा (3) प्रादेशिक भाषा (4) राजभाषा (5) राष्ट्रभाषा (6) अन्तर्राष्ट्रीय भाषा (7) सांस्कृतिक भाषा।

संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाएं

संस्कृत भाषा का स्थान समस्त भाषाओं में देव वाणी व सुरभारती के नाम से सर्वोत्तम है। संस्कृत भाषा का परिवार भी जिस प्रकार मनुष्य अपने परिवार के साथ रहते है। वैसे ही भाषाओं को भी चार परिवारों में विभक्त किया गया है।

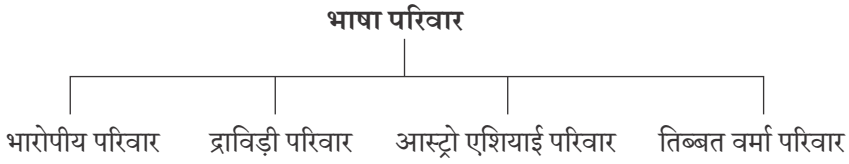

''संस्कृत भाषा का महत्व एवं उसका ''समृद्ध साहित्य''

संस्कृत हमारी देववाणी है। मानव जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के चार पुरूषार्थ माने गये हैं ।

चर्तुवर्ग: फल : प्राप्ति सुखादल्पधियामपि।
काव्यादेव यत्सतेन ततस्वरूपेमनिरूप्यते।।

हमारे प्राचीन विद्वान, ग्रन्थकार, ऋषिमुनीयों के द्वारा जो ग्रन्थ लिखे गये हैं वे सब संस्कृत में ही है। इस भाषा का शब्द सामर्थ्य अद्भुत है।

भू.पू. प्रधानमन्त्री पं. जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में '' यदि मुझसे पूछा जाय कि भारत की सबसे विशाल सम्पत्ति क्या है और उत्तराधिकार के रूप में उसे सर्वोत्तम कौनसी वस्तु प्राप्त हुई है- तो मैं निः संकोच उत्तर दूंगा, कि वह सम्पति संस्कृत भाषा और साहित्य एवं उसके भीतर जमा सारी पूंजी ही है।

(1) संस्कृत प्राचीनतम भाषा :- संस्कृत भारत की ही नही विश्व की प्राचीनतम भाषा है। जन साधारण की धारणाऐं निर्मूल है कि संस्कृत भाषा पूजापाठ तक ही सीमित है। अपितु रामायण, महाभारत काल में भी जन साधारण की भाषा रही है। संस्कृत भाषा में अद्वितीय लिखित साहित्य दो भागों में मिलता है। (1) वैदिक (2) लौकिक

''डॉ. राजेन्द्र प्रसाद '' के द्वारा संस्कृत रिसर्च दरभंगा में 21 नवम्बर 1951 को अपने भाषण के द्वारा कहा गया कि '' संस्कृत वाङमय के लिए अमूल्य निधि है''। उसकी प्राचीनता उसकी व्यापकता सौन्दर्यता और मधुरता सभी इस प्रकार की है, जिनसे मानव जाति का आज तक की संस्कृति का सारा इतिहास ज्योतिर्मय हो उठता है।

याज्ञवल्क्य की मनु स्मृति में कहा गया है कि

''एतद्देष प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन :।

स्वं एवं चरित्रं शिक्षेरन पृथिव्यां सर्वमानवा :।

''विश्व के प्रत्येक भू भाग से ज्ञान के जिज्ञासु इस देश में आएंगे और यहां के प्रतिभाशाली तत्ववेत्ताओं द्वारा नीति की शिक्षा ग्रहण करेंगें। हमारी प्राचीन सामाजिक व्यवस्था की मुख्य रूप से विशेषताएं है। जैसे (1) वर्णाश्रम (2) संयुक्त परिवार (3) कर्मकाण्ड (4) रीतिरिवाज (5) धार्मिक उत्सव वर्ण आश्रम व्यवस्था में अपने अपने व्यवसाय की दृष्टि से मानव का विभाजन होता था।

जन्मना जायते शूद्र: संस्काराद्द्विज उच्चयते।

जन्म से तो सभी शूद्र उत्पन्न होते है लेकिन द्विजत्व की प्राप्ति संस्कारो से मिलती है।

संस्कृत विषये महापुरूषाणां विचारा :

(1) स्वामी विवेकानन्द महाभागानुसारेण :- संस्कृत ध्वनिषु, शब्दभण्डारे च जीवनशक्ते जागरणस्य क्षमता अस्ति भारते क्षेत्रीय भाषाभिः सह संस्कृतमपि अनिवार्यरूपेण अध्यापनीयम्।

(2) श्री अरविन्द महोदयानाम् :- संस्कृतस्य ज्ञानं समस्त हिन्दूनाम् अत्यावश्यकमस्ति। संस्कृतस्य अध्ययन अध्यापनाय एका विशिष्टा व्यवस्था अपेक्षिता वर्तते।

(3) पं. जवाहर लाल नेहरू :- ''यदि मां कोऽपि पृच्छति भारतस्य निकटे सर्व विशिष्टं बहुमूल्यं वस्तु किमस्तीति अथवा भारतस्य सर्वाधिका, सुन्दरां सम्पति का इति। तर्हि अहं, निस्सन्देहं वदिष्यामि संस्कृत भाषा, साहित्यं तद् ज्ञानं च इति।

(4) डा. सर्वपल्लि राधाकृष्णन् मतानुसारेण :- संस्कृतम् एका ताद्वषी भाषा या अस्मान् विचार परम्परया, संस्कृत्या सह योजयति। अद्यावधि अस्माकं देशवासिषु एकतायाः सौभ्रातृत्वस्य च भावनां संचारयन्तौ अस्ति।

महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्यसंतुष्टि का अध्ययन

श्रीमती कविता कुमारी शर्मा
सहायक आचार्य
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ, जयपुर

सारांश - मनुष्य के सम्पूर्ण विकास के लिए शिक्षा को एक आवश्यक तत्व माना गया है। शिक्षा प्रदान करने वाला शिक्षक होता है। शिक्षक को सर्वत्र श्रेष्ठ स्थान प्राप्त होता है। शिक्षक के द्वारा विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान की जाती है, जो देश के भावी नागरिक बनने वाले होते हैं उन्हीं के द्वारा राष्ट्र व समाज का विकास सम्भव होता है। यह तभी संभव होता है जब शिक्षण संस्थाओं में कार्यरत शिक्षक अपने दायित्वों का निर्वाह पूर्ण निष्ठा से करते हैं कार्य संतुष्टि उस कार्य से सम्बन्धित होती है जो शिक्षक को अपने कार्य को पूरा करने पर मिलती है। यह लेख उन प्रमुख कारणों को ज्ञात करने का एक प्रयास है जो कार्यरत शिक्षकों की कार्यसंतुष्टि को बढ़ाने में सहायक होते है। महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों में कार्य संतुष्टि का होना अति महत्त्वपूर्ण व आवश्यक होता है। क्योंकि इन शिक्षकों के द्वारा ही देश के भावी शिक्षकों का निर्माण होता है। अनेक शोधकत्र्ताओं के निष्कर्षों से ज्ञात होता है कि अपने कार्य से संतुष्ट शिक्षक ही कार्य करने के लिए तत्पर तथा अपने कार्यों को पूर्ण निष्ठा से सम्पन्न करते हुए भावी शिक्षकों को अपने दायित्वों को पूरा करने हेतु प्रेरित करते हैं। हांलाकि यह सुनिश्चित कर पाना बहुत मुश्किल होता है कि प्रत्येक शिक्षक अपने वेतन, अवसरों आदि से संतुष्ट होते हैं या नहीं। कार्य संतुष्टि अनेक कारकों पर निर्भर होती है - जैसे वेतन भत्ता अनुभव, वातावरण, उचित अवसर आदि को प्रापत करने के उचित अवसर प्राप्त कर शिक्षक अपने कार्य में संतुष्टि को प्राप्त करते हुए देश के विकास में अपना योगदान देता है।

प्रमुख शब्द- शिक्षक, कार्य संतुष्टि

प्रस्तावना - किसी भी राष्ट्र व समाज की उन्नति शिक्षा की गुणवत्ता पर निर्भर करती है, जो कि प्रशिक्षित शिक्षकों पर निर्भर होती है। शिक्षक को ही राष्ट्र व समाज रचयिता माना गया है। विद्यार्थी अपनी आकांक्षाओं व आवश्यकताओं से शिक्षक के माध्यम से जुड़े रहते हैं। शिक्षक विद्यार्थियों को अपने दायित्वों का बोध कराने व उन्हें विकसित करने का माध्यम होते हैं शिक्षण की गुणवत्ता पूर्णतयाः शिक्षक पर आधारित होती है, जो शिक्षक अपने कार्य से संतुष्ट होते हैं वे अपने दायित्वों के प्रति समर्पित रहते हैं। हमारे राष्ट्र में शिक्षकों की नियुक्ति उनकी योग्यता व अनुभव

के आधार पर की जाती है। अधिक योग्यता व अनुभव वाले शिक्षक अपने कार्यों को पूरा करने का सदैव प्रयत्न करते रहते हैं।

नई शिक्षा नीति 2020 में शिक्षकों के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि किसी भी समाज में शिक्षक से ही, उस समाज की सांस्कृतिक तथा सामाजिक दृष्टि का पता चलता है।

कार्यसंतुष्टि - कार्यसंतुष्टि से आशय है कि कार्य के प्रति रूचि, पर्याप्त आय, पदोन्नति के अवसर, सामाजिक व आर्थिक स्थिति, सुरक्षा की भावना आदि किसी भी शिक्षक की कार्य संतुष्टि के निर्धारित करने वाले तत्व होते हैं। कार्य संतुष्टि दो शब्दों से मिलकर बना शब्द है। कार्य + संतुष्टि

प्रथम शब्द कार्य का अर्थ - व्यक्ति के द्वारा अपनाया गया व्यवसाय से होता है। दूसरा शब्द संतुष्टि का अर्थ - प्रसन्नता से होता है।जब व्यक्ति के द्वारा किये गये कार्य से उसे प्रसन्नता की अनुभूति होती है, उसे हम कार्य संतुष्टि कह सकते हैं।कार्य संतुष्टि एक प्रकार का आन्तरिक अनुभव होता है। जिसे व्यक्ति अपने मन में कार्य के सम्पन्न होने के पश्चात् आनंद की अनुभूति करता है।

प्रत्येक व्यक्ति की प्रत्येक कार्य में संतुष्टि के भिन्न-भिन्न पहलू होते हैं। शिक्षकों को किन पक्षों से संतुष्टि की अनुभूति होती है। यह जानना आवश्यक होता है। कार्यसंतुष्टि की भावना ही शिक्षक को अपना कार्य करने के लिए प्रेरित करती है, परन्तु कई ऐसे कारण भी होते हैं, जिसके कारण कार्य संतुष्टि प्रभावित होती है और शिक्षक अपने दायित्वों के प्रति उदासीन हो जाते हैं।

शिक्षक-कार्यसंतुष्टि में सम्बन्ध - शिक्षक औरकार्य संतुष्टि में सहसम्बन्ध पाया जाता है। जब शिक्षक अपने कार्य से संतुष्ट होता है तब ही वह भावी शिक्षकों का सफलता पूर्ण निर्माण कर सफल होता है। शिक्षक का सीधा सम्बन्ध शिक्षण से होता है। वह भावी शिक्षकों में दायित्वों को बोध करते हुए उन्हें निर्वाह करने की प्रवृत्ति का विकास कर पाने में सफल होते हैं। साथ ही अपने कार्य के प्रति समर्पण, उच्च चरित्र निर्माण आदि गुणों का विकास कर एक अच्छे शिक्षक बनने के लिए प्रेरित एवं अग्रसर करते हैं। यह सब तभी संभव हो पाता है, जब शिक्षक अपने कार्य से संतुष्ट होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शिक्षक व कार्य संतुष्टि में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। शिक्षकों में कार्य संतुष्टि को निर्धारित करने तथा इसे प्रभावित करने वाले कारकों की पहचान करना अत्यंत आवश्यक है। इससे महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के उचित व्यवहार और असंतुष्टि को समझा जा सके, जो कि पहचान करना अत्यंत आवश्यक है। इससे महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के उचित व्यवहार और असंतुष्टि को समझा जा सकें, जो कि उनकी कार्य संतुष्टि को प्रभावित करते हैं।

कार्य संतुष्टि को प्रभावित करने वाले कारण -

शिक्षकों की कार्य संतुष्टि को अनेक ऐसे कारण प्रभावित करते हैं, जो प्रबंधक के द्वारा नियंत्रित एवं कार्य की प्रकृति से सम्बन्धि होते हैं।

- **लिंग** - लिंग का प्रभाव कार्य संतुष्टि पर स्पष्ट से देखा जाता है। महिलाओं में पुरूषों की तुलना में कार्य संतुष्टि अधिक पाई जाती है।
- **आयु** - आयु का सीधा प्रभाव कार्य संतुष्टि पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कभी -कभी आयु के बढ़ने पर व्यक्ति में संतुष्टि की भावना अधिक बढ़ जाती है।
- **योग्यता** - शिक्षकों की योग्यता भी कार्यसंतुष्टि को प्रभावित करती है, जो शिक्षक अधिक योग्य होते हैं। वे अपने कार्य से पूर्ण संतुष्ट नहीं हो पाते जबकि कम योग्यता वाले अपने कार्य से संतुष्ट होते हैं।
- **वेतन** - किसी न किसी रूप में वेतन भी कार्यसंतुष्टि को प्रभावित करता है। शिक्षक को उचित व पर्याप्त वेतन मिलने पर शिक्षक संतुष्टि की अनुभूति करता है तथा कम वेतन वाले शिक्षक आर्थिक, मानसिक रूप से असंतुष्ट रहते हैं।
- **व्यावसायिक स्तर**- व्यावसायिक स्तर भी कार्यसंतुष्टि को प्रभावित करता है। व्यावसायिक स्तर पर जितना अधिक होगा संतुष्टि का स्तर भी उतना ही अधिक पाया जाता है।
- **पुरस्कार** - पुरस्कार कार्यसंतुष्टि को प्रभावित करते हैं एवं पर्याप्त प्रेरित करने का कार्य भी करते हैं। पुरस्कार प्राप्त शिक्षक में कार्य संतुष्टि का स्तर अधिक होता है।

निष्कर्ष - उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते है कि शिक्षक अपने कार्य में संतुष्टि का अनुभव तभी कर पाने में समर्थ है जब वह पूर्ण रूप से मानसिक व शारीरिक रूप स्वरूप हो उसे अपने विषय का सम्पूर्ण व स्पष्ट ज्ञान प्राप्त हो साथ ही प्रशिक्षण की व्यवस्था उच्च हो। शिक्षक को वेतनलाभ, पदोन्नति, सम्मान आदि कारकों के विकास के लिए उचित अवसर प्रदान किये जा सकें। शिक्षकों को उपर्युक्त योग्यता के आधार पर पदोन्नति प्रदान की जानी चाहिए। ताकि शिक्षक अपने कार्य से संतुष्टि की अनुभूति कर सके एवम् राष्ट्र के विकास में सहायक बन सकें।

संदर्भ -

- सिंह, अरूण कुमार. (2006). मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल, नई दिल्ली।
- कपिल एच.के. (2004). अनुसंधान विधियाँ, वेदांत प्रकाशन, लखनऊ।
- अग्रवाल जे.सी. (2002). एजूकेशनल रिसर्च एन इन्ट्रोडक्सन, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली।
- सक्सेना, ए.के. (2005). शिक्षा में अनुसंधान, प्वाइंटर प्रकाशन, जयपुर।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा

संगीता शर्मा
सहायक प्रोफेसर
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ, जयपुर

समाज निरन्तर प्रगतिशील है। हमारे समाज में जो भी प्रगति हुई है उसका कारण शिक्षा है। शिक्षा समाज का आधार है। यह सुधारों को जन्म देती है और नए विचारों (इनोवेशन) के लिए रास्ता बनाती है समाज में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का महत्व कमतर नहीं आंका जा सकता है। यही वजह है कि महान हस्तियों ने एक सभ्य समाज में गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा पर विशद् चर्चा, लेखन, संगोष्ठियों में अपने विचार व्यक्त किये हैं। शिक्षा के कारण ही मनुष्य ब्रह्माण्ड की विशालता और परमाणुओं में इसके अस्तित्व के रहस्य का पता लगा सकता है। इस प्रकार शिक्षा बालक के गुणात्मक विकास के लिए आवश्यक है। गुणात्मक शिक्षा, लिंग, नस्ल, जातीयता, सामाजिक आर्थिक स्थिति या भौगोलिक स्थिति की परवाह किए बिना प्रत्येक छात्र के सामाजिक भावनात्मक, मानसिक, शारीरिक एवं संज्ञानात्मक विकास पर केन्द्रित होती है।

शिक्षा स्वयं में जीवन है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में चरित्र, प्रवृति, कौशल और नैतिक गुणों का निर्माण करना है। जिसकी शिक्षा सहजीवी जीव प्रक्रिया द्वारा प्रारम्भ होती है और आगे भी इसी के साथ चलती रहती है। आज का मानव शिक्षा को भविष्य की दृष्टि से देख रहा है क्योंकि आज शिक्षा का विकास आर्थिक विकास की अगुवाई कर रहा है। अपरिचित बालकों को अपरिचित दुनिया के लिए शिक्षित करना है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा आधुनिक समाज की माँग है और चाहे कोई भी क्षेत्र हो गुणवत्ता की मांग हर जगह होती है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से आशय शिक्षा में गुणों का विकास करना है, उन्हे शिक्षा मे समावेशित करना है ताकि छात्रों एवं शिक्षा के उददेश्यों की प्राप्ति हो सके। शिक्षा में गुणवत्ता का सम्बन्ध शिक्षा के उददेश्यों से ही है। विभिन्न मान्यताएँ और मूल्य लोकतन्त्र में शिक्षा की धारणा को आधार बनाते हैं इसलिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की आवश्यकता यह सुनिश्चित करती है कि अभ्यर्थी की क्षमता को अधिकतम करने के लिए खोला जाए ताकि उसकी सृजनात्मकता को बढ़ावा मिले। आधुनिक युग में किसी भी देश की शिक्षा को गुणवत्तापूर्ण कहना गलत होगा क्योकि वर्तमान शिक्षा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति करने में असफल रही है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में उसी शिक्षा का समावेश होता है जो शिक्षा शिक्षण अधिगम में छात्रों की रूचि व क्षमताओं को समझे व समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करे और छात्रों को जीविकोपार्जन योग्य बनाकर देश के लिए एक सुदृढ़ नागरिक तैयार कर सके।

यूनेस्को की रिपोर्ट 1996 में सीखने की सामग्री के स्तम्भों को भीतर के खजाने को सीखने का संकेत देना हैं :-

1. Learning to be (होना सीखना)
2. Learning to learn (सीखना सीखना)
3. Learning to Know (जानना सीखना)
4. Learning to Live together (साथ रहना सीखना)

इन स्तम्भों की प्राप्ति का सम्बन्ध शिक्षा में गुणवत्ता से ही जिसे हम सब एक साथ रहकर, करके, बनाकर, जानकर सीख सकते हैं। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मतलब आज की शिक्षा का विकल्प यानि जो आज नहीं हो रहा है, उसे सम्भव बनाना है। अर्थात् किसी गुण में उत्कृष्टता प्राप्त करना जो कि हमे शिक्षा में चाहिए और शिक्षा में गुणात्मकता लाने के लिए हमें पाठ्यक्रम, वातावरण, शिक्षक एवं छात्रों के मध्य गुणवत्ता लानी होगी। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने का प्रमुख आधार ही पाठयक्रम है, जिसके दवारा समस्त विद्यालय एवं शिक्षा का संचालन होता है। इसलिए शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि करने के लिए जरूरी है कि पाठयक्रम का निर्माण छात्रों के स्तर के अनुसार एवं समाज की आवश्यकता के अनुसार किया जाए। शिक्षा की गुणवत्ता की अगली कड़ी में वातावरण का प्रमुख होना आवश्यक है इसलिए शिक्षा के उद्देश्यों को निर्माण, भौतिक, सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक वातावरण के आधार पर किया जाए। इसी प्रकार शिक्षा की गुणवत्ता की अगली कड़ी में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण सूत्रधारक की होती है, जो समाज के लिए योग्य नागरिकों को तैयार करता है। शिक्षक ज्ञान को एक पीढ़ी मे दूसरी पीढ़ी मे स्थानान्तरण करता है इसलिए शिक्षा में गुणवत्ता लाने की क्रियान्विति का उत्तरदायित्व शिक्षक का होता है। शिक्षा की गुणवत्ता की अंतिम कड़ी में जिसमें छात्रों में अगर सीखने की जिज्ञासा हो, चरित्र अध्ययनशील हो तो शिक्षा में गुणवत्ता होना निश्चित है यह तभी सम्भव है जब कि व्यक्तित्व में गुणवत्ता का समावेश हो।

निष्कर्ष :- शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य छात्रों का सर्वांगीण विकास करना होता है, यह तभी सम्भव है जब छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान की जाए। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा वह नहीं है जो सिर्फ ज्ञान पर आधारित हो अपितु वह ज्ञान के साथ-साथ व्यावहारिक हो जो छात्रों को समाज में संघर्ष करने योग्य बना सके। देश के लिए भावी कर्णधार को तैयार कर सके। जिसका निर्माण अभी तक नहीं हुआ है I

संदर्भ सूची

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
- त्यागी डॉ. गुरसनदास, नन्द डॉ. विजय कुमार, उदीयमान भारत में शिक्षा तृतीय संस्करण 2009, विनोद पुस्तक मन्दिर
- http://www.sarkariyojanaa.com, http://www.rashtryashiksha.com, http://drishtias.com

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : क्रियान्वयन समस्याएँ एवं समाधान

उपविषय:- शोध उपागम-बहुविषयक अंतर्विद्यापरक शिक्षा

दिलीप कुमार पारीक
असिस्टेंट प्रोफेसर
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ, शाहपुरा बाग, जयपुर

शिक्षा का शाब्दिक अर्थ है सीखने और सिखाने की क्रिया। शिक्षा समाज में चलने वाली वह निरन्तर प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों का विकास और व्यवहार में सुधार लाना है। शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य ज्ञान और कौशल में वृद्धि कर मनुष्य को योग्य नागरिक बनाना है।

स्वतन्त्रता के बाद अनेक नीतियां बनाई गई जिनमें कुछ कमियाँ थी। इसके तहत बच्चा ज्ञान तो हासिल कर रहा है किन्तु यह ज्ञान उसको भविष्य में रोजगार के अवसर पैदा करने योग्य नहीं बन पा रहा है।

अतः इन कमियों को दूर करने के लिए नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 लाने की आवश्यकता महसूस की गयी। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, 21 वीं सदी की ऐसी पहली शिक्षा नीति है जिसका लक्ष्य हमारे देश के विकास के लिए आने वाली आवश्यकता को पूरा करना है। यह नीति भारत की परम्परा और सांस्कृतिक एवं सामाजिक मूल्यों को बरकरार रखते हुए 21 वीं सदी की शिक्षा के लिए आंकाक्षात्मक लक्ष्य, शिक्षा व्यवस्था के नियमों का वर्णन सहित सभी पक्षों के सुधार और पुर्नगठन का प्रस्ताव रखती है। यह नीति इस विचार पर बल देती है कि शिक्षा से न केवल साक्षरता, उच्च स्तर की तार्किकता और समस्या समाधान सम्बन्धित संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास होना चाहिए, बल्कि नैतिक, सामाजिक और भावनात्मक स्तर पर भी व्यक्ति का विकास होना चाहिए।

भारत में समग्र और बहुविषयक तरीके से सीखने की परम्परा रही है समग्र और बहुविषयक कौशल आधारित शैक्षिक दृष्टिकोण के माध्यम से अनुसंधान में सुधार और बढोत्तरी होती रही है। बहुविषयक शोध व्यक्ति में सर्वांगीण विकास यथा कला, मानविकी, भाषा विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, व्यावसायिक तकनीकी, व्यवसाय क्षेत्रों में नैतिकता तथा कौशलों को सीखने में मदद करेगें।

N.N.R.F. के माध्यम से सभी क्षेत्रों में गुणवता पूर्ण अकादमिक अनुसंधान को उत्प्रेरित किया जायेगा। प्राचीन इतिहास से मिले साक्ष्यों से पता चलता है कि उच्चतर शिक्षा के स्तर पर सर्वोत्तम शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया उस वातावरण में श्रेष्ठ होती है जहाँ अनुसंधान और सृजन की मजबूत संस्कृति रही हैं। दुनिया के श्रेष्ठ अनुसंधान बहुविषयक विश्वविद्यालय में ही हुए हैं।

प्राचीन कई ऐसे व्यापक साहित्य है जो विभिन्न विषयों के संयोजन को प्रकट करते हैं बाणभट्ट की कादम्बरी शिक्षा को 64 कलाओं के रूपों में वर्णित करती है इनमें न केवल गायन और चित्रकला जैसे विषय है अपितु रसायन शास्त्र, गणित तथा व्यावसयिक क्षेत्र के विषयों को भी शामिल किया गया है। आज रोजगार और वैश्विक पारिस्थितिकी में तीव्र गति से परिवर्तनों से यह जरूरी हो गया है कि बच्चों को जो कुछ सिखाया जावे वह उससे सतत् सीखने की कला भी सीखे। यह तभी सम्भव है जब उसमें जिज्ञासा के कौशल को विकसित किया जाये। 21 वीं सदी की शिक्षा ऐसी हो जो विषय वस्तु की अपेक्षा बच्चा समस्या समाधान और तार्किक और रचनात्मक रूप से सोचना सीखे, विविध विषयों के बीच अन्तर सम्बन्ध, कुछ नई सोच, नई जानकारी एवं नये बदलाव को उपयोग में ला सके।

पाठ्यक्रम में बहुविषयक सामग्री को शामिल किया जावे। विज्ञान और गणित के अलावा बुनियादी कला, शिल्प, मानविकी कला, खेल फिटनेस, भाषा साहित्य, संस्कृति और मूल्यो का समावेश किया जावे। इस शिक्षा नीति में बताया गया है कि शिक्षा बालकों का शैक्षिक विकास या मूल्यांकन पर आधारित ना होकर यह बालकों के व्यक्तित्व का समग्र विकास करने वाली होनी चाहिए। इस नीति में महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा को स्थान दिया गया है। यथा हस्तकौशल, आध्यात्मिकता, शिल्पकला, शारीरिक एवं बौद्धिक (मानसिक) विकास। यह शिक्षा नीति विश्व शान्ति के लिए "वसुधैव कुटुम्बकम्"की भावना को विकसित करने वाली होगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अन्तर्गत कहा गया है कि देश के विभिन्न उच्चतर शिक्षा संस्थान व भाषा, साहित्य, संगीत, दर्शन, कला, नृत्य, नाट्यकला, गणित, सांख्यिकी सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक विज्ञान समाजशास्त्र अर्थशास्त्र खेल, अनुवाद एवं व्याख्या और अन्य विषयों के विभागों को बहुविषयक, भारतीय शिक्षा और वातावरण को प्रोत्साहित करने के लिए स्थापित एवं मजबूत किया जायेगा। समग्र शिक्षा के अन्तर्गत उच्चतर संस्थान अपने ही संस्थानों में या अन्य उच्चतर शिक्षा शोध संस्थानों में इंटर्नशिप के अवसर उपलब्ध कराऐंगें। जैसे स्थानीय उद्योग, व्यवसाय, कलाकार, शिल्पकार आदि के साथ इंटर्नशिप अध्यापकों और शोधार्थियों के साथ शोध इंटर्नशिप ताकि छात्र सक्रिय रूप से अपने सीखने के व्यावहारिक पक्ष के साथ जुड़े और साथ ही साथ स्वयं के रोजगार की संभावना को बढ़ा सकें।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बहुविषयक शिक्षा एवं शोध के लिए कहा गया है कि भारत में विज्ञान और गणित से लेकर कला, साहित्य, स्वर, भाषा चिकित्सा और कृषि तक के विषयों में अनुसंधान एवं ज्ञान की लम्बी परम्परा रही है और भविष्य में इन्हें हमें अपनाना चाहिए। समग्र एवं बहुविषयक शिक्षा एवं शोध के माध्यम से भारत जल्द से जल्द एक मजबूत और प्रबुद्ध ज्ञान समाज के गुरु के रूप में अपनी प्रतिष्ठा को और सुदृढ़ करेगा। यह तभी सम्भव है जब हम विद्यार्थियों को बहुविषयक शिक्षा एवं शोध के लिए प्रेरित करेगें।

CHALLENGES IN COMMUNICATION AND DISSEMINATION OF TRADITIONAL KNOWLEDGE

Dr Manisha Sharma
Principal
Rajasthan Shikshak prashikshan Vidyapeeth

Globalization and global expansion is the latest trend to have affected the world landscape of today. Not surprisingly, the one thing that makes this globalization possible is cross-border communication and correspondence. Along with language, a country's culture, norms, and values play a significant role in making this communication possible.

A country's culture is more than just the way its people practice their traditions .it's a complete way of life, communication, norms, and values that shape how society is formed.

Every culture has a history revealing its past and civilization, its roots and ancestry. The inception of the culture and identity of a society traverses a path that follows multitudes of practices that nurture and shape the very existence and identity of a civilization paving ways through the wrath of nature and transaction with other societies.

The process of civilization is imbued with practices that it has followed and practiced through trial and error methods many a time and eventually has become second nature to the community. Such practices have changed hands and percolated down across generations and have been practiced without scientific tests but with known and proven results to the satisfaction of the community. Such tacit knowledge is followed by word of mouth over time. This knowledge is traditional knowledge that has been followed traditionally by a community as prescriptions for meeting various problems including ailments, problems of nature, problems of survival, etc. Such knowledge is specific in practice to a specific community or geography.

Traditional knowledge is thus indigenous knowledge of a region. World Intellectual Property Organisation (WIPO) defines Traditional Knowledge as " knowledge, know - how, skills, and practices that are developed, sustained and passed on from generation to generation within a community, often forming part of its cultural or spiritual identity ".

Indian civilisation is one of the oldest in the world. Diversity of all types is pervasive in India including linguistic, religious, ethnic, geographic, etc. Each ethnic group has huge traditional knowledge having practising as a specific identity to the group. Such practices are rampant in traditional medicinal systems, mathematics, astronomy, art and music, justice, polity, architecture, town planning, etc.

Vedic mathematics has provided easy solutions to complex mathematical problems and owes its origin to the Atharva Veda. Likewise, Ayurveda is an established system of curing ailments of both body and mind. Besides, Indian yoga has also found a place in the West as a panacea for emotional well - being. The Harappan civilisation bears testimony to advanced patterns of urbanisation in its drainage system, the grid pattern of roads, and granary. Besides, advanced alchemy contributed to metallurgical improvisations (Banerjee, 2022). Indian traditional knowledge has travelled as a parampara as it changed hands across generations. This knowledge over time has been institutionalised as vidyas and kalas as forms of knowledge in diverse fields and forms of art and skill respectively. Most of the traditional knowledge lacks documentation and word of mouth is the instrument of flow and practice.

Indian knowledge system incorporates 18 vidyas which are traced from the four Vedas, four auxiliary Vedas, Puranas, etc. Additionally, 64 forms of arts are referred to in ancient India as vocational disciplines. These disciplines are taught in guru - shishya format mostly through practice. These kalas were more than a vocation and means of livelihood (Chandran, n.d.). It was synonymous with worship as the art forms exalted the highest levels of perfection. Despite having roots, in a religious context, the knowledge so practiced has been proven to have a scientific basis as established in today's context. Traditional knowledge systems can be a guiding tool in reducing the impacts of natural disasters such as earthquakes as established by age - old constructions withstanding earthquakes in prone seismic zones.

NEP 2020 emphasises knowledge of India to be an integral part of the academic curriculum wherein students shall be exposed to Indian knowledge systems including literature, philosophy, yoga, agriculture, astronomy, governance, etc. As per a general guideline, every student in the UG and PG Programme is to take up courses equivalent to 5 % of the total mandated credits. UGC has launched courses on Indian Knowledge systems through MOOCs using the SWAYAM portal. The course shall enable exposure to Indian

traditional knowledge systems across the country on a uniform pedagogy for various types of learners. The Indian Knowledge System envisages tribal knowledge along in with traditional learning methods (Mandavkar, n.d.).

The traditional knowledge system of India has been robust in knowledge as it encompassed all spheres of life and livelihoods. Such knowledge is documented in scattered pockets by institutions and percolated to the masses for deriving the benefits of the same. Largely, however, such knowledge remains tacit and confined to cultures and geographies. Considering the strength in adding worth to life and lifestyle, traditional knowledge has been disseminated amongst the masses in general and the upcoming generations in particular. This shall invite further research into establishing a scientific basis of traditional knowledge and pave the way for further studies to incorporate the same in mainstream education.

Challenges Ahead

It is hence imperative that traditional knowledge does not lose its identity over time and in the hands of modern knowledge systems. It is equally essential to preserve the practices as they bear testimony to the rich cultural heritage of the country. Given the benefits of such knowledge and the benefits such knowledge has provided to society, traditional knowledge needs to be adequately studied, preserved, and handed over to successive generations. It can be the basis for further research and can be indicative of an improvised lifestyle and a better society. However, the process of dissemination of traditional knowledge is not easy. The process is imbued with challenges of varied types.

Communication Issues

Most of the traditional knowledge is tacit and in native languages. In certain cases, as in art forms, such knowledge is limited to and associated with very limited masters who are old enough to adequately percolate down the generations. Further to this, access to knowledge by researcher sometimes entail a linguistic barrier and, in many cases, cultural and / or religious barrier in accessibility.

Herbal medicines specific to certain communities entail the use of herbs limited to certain geographies. Appropriate understanding of the knowledge requires researchers who are familiar with the cultural values of the region. Ethnographic research studies can be

instrumental in this regard. However, given the difficulties of cultural and religious barriers in ethnographic studies, access to such knowledge continues to remain difficult.

Percolation of Traditional Knowledge

To attain the benefits of traditional knowledge in society it is necessary that the same is accessible in the form of course curriculum in different academic areas right from secondary schools to higher education levels. A gradual transition in weightage and depth can be assured if and only if such curricula are imparted in a graduated manner across academic levels of education. This can facilitate incorporation with mainstream education and hence ensure assimilation of lifestyle with the values acquired from such education and its utility in all spheres of life as in town planning and architecture, mathematics, governance, etc. Access to traditional knowledge is still in its infancy to develop a structured and graduated curriculum. This poses a challenge to the proliferation of such knowledge systems in the society.

The Dearth of Resource Persons

Along with the dearth of a structured curriculum, there is also a dearth of qualified resource persons. The unavailability of teachers with wide exposure to traditional knowledge is a hindrance in imparting traditional knowledge in institutions. There is a necessity to train the trainers so that there is a seamless transmission of traditional knowledge in the curriculum. Researchers in traditional knowledge may be suitable for training educators and providing necessary exposure to traditional knowledge.

The University Grants Commission (UGC) in collaboration with the IKS (Indian Knowledge System) division of the Ministry of Education has planned to teachers of HEI so that Foundational Courses on IKS could be taught to students. The process has been initiated during 2023 through the initiation of Six Day short term face to face training programmes presently for 1000 teachers at six HRDCs spread over the country.

The Dearth of Documented Knowledge

Traditional knowledge is largely tacit and limited to a handful of masters in each field. It is difficult to decipher and document owing to linguistic and cultural barriers. In many cases, the process of documentation is difficult to achieve given the complexity of the subject such as in the case of arts and unfamiliarity with the depth and exposure of the subject. Such

knowledge needs to be gathered in situ to reduce errors and be made available to the communities through IT based applications so that the community is honored as part of the documentation process. The process of documentation itself is tricky, and even if documented such knowledge needs to be structured appropriately for the understanding of the masses and in line with the appropriateness of the learners. This process requires adequate design of curriculum and is a time - consuming process.

The Mental Block

The modern knowledge system is proven as scientific and established as instrumental in leading to changes in society. However, the same is not true for traditional knowledge. The very appropriateness of traditional knowledge as scientific and its worth to society is to be established first. Till then, the acceptability of traditional knowledge in modern lives and the present society is far from being accepted. There is a reluctance to associate traditional knowledge as parallel to modern knowledge systems. Appropriate awareness among the masses can aid in acceptability. However, providing awareness is a daunting task. Documentaries, films, advertisements, etc. highlighting the positive effects of traditional knowledge can eliminate the notion of traditional knowledge as being unscientific and unempirical for acceptance amongst the masses.

Association with Religion

There is a perception that traditional knowledge is associated with religious practices. Although some are, including food habits ; yet not all are rooted in religion. Scientifically, many practices have been established to have far - reaching positive consequences as intermittent fasting is proven to fight cancer cells in the body. The present - day research findings do substantiate the scientific basis inherent in the traditional practices. Arthashastra explains management, diplomacy and war tactics, law, and governance (Chandran, n.d.).

Vedic Mathematics has a strong root well established through present - day mathematical research. The beneficial effects of basil leaves and turmeric are beyond religious context. The change in perception can aid in the larger acceptance of traditional knowledge amongst the masses. This calls for popular science and general literature to be disseminated through mass media and incorporated into the school curriculum for change in the notion.

Lack of Repository

As traditional knowledge is tacit and wherever researched and documented it is imperative to be made available across the globe. A repository for such knowledge can help in ease of access to knowledge as well as further research. Such a repository shall do away with studied traditional knowledge being available in specific regions, and research institutions and be made available to all. This can invite further research on the subjects and shall aid in bringing Indian traditional knowledge accessible across research institutions. A repository shall aid in conserving the traditional knowledge and the indigenous communities associated. Such repositories can be both confidential and synchronous with Intellectual Property Rights (IPR).

Conclusion

In the context of the discussion, the process of dissemination of traditional knowledge calls for a rigorous exercise in documentation and training of manpower for the availability of knowledge and sensitizing the society. It can be a solution to protecting and preserving the rich culture and heritage of India. Addressing the challenges can be a solution to the is dissemination of traditional knowledge and bringing it to the global platform.

विद्यापीठ में आयोजित कायक्रमों की झलकियाँ 2023

प्रकाशक

राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन

राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ

शाहपुरा बाग, आमेर रोड़, जयपुर

Ph. : +91-141-2671967 E-mail : info@rspv.org | Website : www.rspv.org